गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देव महेश्वरः
गुरु साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरुवेनमः

वर्ष ४ शाका सं० १८७९ मार्च १९५८ तरंग १

प्रार्थना

गुरु दाता दया की दृष्टि करो, जग में नहिं कोई हमारा है।
सम्बन्धी स्वारथ के सब हैं, केवल तेरा एक सहारा है ॥१॥
तन विकल तो मन अति चंचल है, नाड़ियों तक में हलचल है।
शान्ती का कोसों पता नहीं, यों काल करम ने मारा है ॥२॥
नहिं भोग न युक्ति का कोई जतन, नहिं ज्ञान ध्यान का है साधन।
दुबिधा दुचिताई ने घेर लिया, इस घेर का वार न पारा है ॥३॥
आपति और विपतिका सामना है, क्योंकर इस मन को थामना है।
इस बात का पूरा निश्चय हुआ, दुखदाई महा संसारा है ॥४॥
क्या करूँ कहाँ भागूँ जाऊँ, किस बिधि शान्ति की दशा पाऊँ।
मेरे गले पड़ी दुख की फाँसी, यह काल बड़ा हत्यारा है ॥५॥
सत संगत के नहिं सुने बचन, सुनकर भी नहिं होता है मनन।
निष्फल जाता है नर जीवन, मन हारा हारा हारा है ॥६॥
आये हैं शरण में अब तेरे, माया और काल नहीं घेरे।
राधास्वामी दया का रूप है तू, दे नाम, नाम हमें प्यारा है ॥७॥

'शिव' के ग्राहकों से निवेदन

'शिव' तीन साल से बराबर आप सब भाईयों की सेवा में भेजा जा रहा है। इसमें महर्षि शिवव्रत लाल जी महाराज की एक से एक बढ़कर पुस्तकें प्रकाशित की जारही हैं जिनके पठन-पाठन से पाठकों को लाभ प्राप्त हो रहा है।

'शिव' किस प्रकार का पत्र है इसको आप सब लोग भली-भाँति जानते हैं। इसके ग्राहकों की संख्या इतनी कम है कि अभी तक अपने पावों पर खड़ा नहीं हो सका है और काफी नुकसान उठाना पड़ रहा है। यदि 'शिव' आपको पसंद है तो इसके दायरे या क्षेत्र को बढ़ाते चलिये ताकि 'शिव' अपना कार्य्य उचित ढंग से चालू रख सके और उत्तमोत्तम अधिक सामिग्री आपकी भेंट कर सके। आप भी इससे लाभ उठावें और हमको काम करने में सहूलियत मिले। यह काम अधि-कारियों के लिये किया जा रहा है। हमारा इसमें कोई निजी लाभ नहीं है। हर एक सज्जन सुगमता से एक दो ग्राहक बना सकते हैं। कोई कठिन बात नहीं है।

शिव के चतुर्थ वर्ष का यह पहिला अङ्क है। जिन सज्जनों ने अब तक इस वर्ष का तथा पिछले वर्ष का मूल्य न भेजा हो वह तुरन्त कुल रुपया मनीआर्डर द्वारा भेजदें और साथ ही एक दो ग्राहकों से भी भिजवाने का कष्ट करें।

गुरु सबका कल्याण करें।

— नन्दूभाई

सत पुरुष के चरण कमल में

प्रार्थना

जो रमा रहता है सब में, सब का रमता राम है ।
उसको सच्चे मन से चित् से, बुद्धि से परनाम है ॥

प्रेम का भंडार करुणा, और दया का मूल वह ।
शान्ती आनन्द दायक, सत् चित् उसका नाम है ॥

उसकी भक्ति कीजिये, उससे लगे लौ सर्वदा ।
जिस के घट में रम के वह, बैठा उसे विश्राम है ॥

सच्चिदानन्दं अखण्डं, कैवलं आनन्ददा ।
ब्रह्म सर्वाकार, सर्वाधार, सर्वाधाम है ॥

रमने वाले ! आके रमजा, हृदय को बैठक बना ।
फिर तो यह घट ही हमारा, राधास्वामी धाम है ॥

❀
❀ ❀

भूमिका

है अहिंसा कहते हैं सब परम धर्म।
जो अहिंसक हो वह जाने इस का मर्म॥
अधर्म है हिंसा, न करना तुम उसे।
इस से बचकर चलना, यह दुष्कर्म है॥
पाप का है मूल हिंसा जान लो।
है अहिंसा पुन्य इस को मान लो॥
सच्चे मन से जो अहिंसक होते हैं।
दुख से बचकर नींद सुख की सोते हैं॥
जो हैं हिंसक अपना सबकुछ खोते हैं।
पाके दुख संसार के नित रोते हैं॥
प्रेम का रस्ता सुगम है भाइयो।
सोच कर इस पन्थ में आजाइयो॥
बुद्ध तीर्थंकर अहिंसक बन गये।
हो अहिंसक सिद्ध पद में लय हुये॥
था अहिंसक पूरा ज्ञानी वर्द्धमान।
बुद्ध गौतम का यह मत है तू भी जान॥
जान कर पहिंचान कर यह मान ले।
मान कर हित चित से गुरु का ज्ञान ले॥
जो तुझे करना है कर इस जग में आ।
पर न हिंसा कर न इस मारग में जा॥
धर्म अहिंसा है यही है सब का सार।
और सब पाखंड है मन से विचार॥

लाख पूजे कोई देवी देवता।
पाप से हिंसा के अपने को बचा ॥
तोड़ मन्दिर फोड़ मूरत करले सब।
भस्म करदे तीर्थों को जा के सब ॥
जो है हिंसक वह असुर का रूप है।
जो अहिंसक धर्म का वह भूप है ॥
जिस ने जाना इस अहिंसा भेद को।
मेटा उसने जीते जी भव खेद को ॥

शाहवार मोती में क्या है ? केवल अहिंसा की शिक्षा दी गई है। हम हिन्दू हैं, सनातनी कहलाते हैं परन्तु मत मतान्तर की दृष्टि और अपने कर्तव्य से हिन्दू धर्म को लजाते रहते हैं। पोथियों का धर्म कुछ नहीं। यह कोई नहीं पूछता कि तुम्हारी धर्म पुस्तक में क्या लिखा है। सब तुम्हारे आचरण और जीवन व्यवहार को देख कर समझ जाते हैं कि तुम सत्य वादी हो या पाखंडी हो। अहिंसा सत् है। हिंसा असत् है। अहिंसा धर्म का मूल और निचोड़ है। हिंसा अधर्म और पाप की जड़ है। यह समझ में नहीं आता कि मनुष्य क्यों किसी के चित्त को दुखाता फिरे और जीव जन्तुओं के गले पर छुरी फेरे। यह धर्म के लक्षण नहीं हैं। वेद भगवान की श्रुति है—"मित्रस्य चक्षुषा समीक्षा महे" अर्थात् सारे जगत् को मित्र की दृष्टि से देख। महाभारत का स्वर्ण सिद्धान्त है—"अहिंसा परमो धर्म्मः"

मसजिद को तोड़ आग लगा दे कुरान को।
काबा को फोड़ चाहे तू ईमान अपना खो ॥

दिल को न तू दुखा है गुनाहों में यह बड़ा।
रहता है दिल में सब के जिसे कहते हो खुदा॥
बन्दे खुदा के जब हुये, कुछ उसका ध्यान हो।
दिल है खुदा का धर यह बात मेरी मान लो॥
दिल में गुंजर खुदा का है कहता हूं बरमला।
इनसां के दिल में छुप के बसा रहता है खुदा॥
दिल को दुखाया जिसने वह दुशमन खुदा का है।
मसजिद में दिल के बसके खुदा आप रहता है॥

इस कहानी में वेदान्त मत और बुद्धमत के सिद्धान्तों की विवेचना की गई है। युक्ति प्रति युक्ति की सहायता से पक्ष को दृढ़ करना वेदान्त नहीं है किन्तु ज्ञान का जीवन व्यतीत करना ही वेदान्त है। कहा जाता है कि स्वामी शंकराचार्य्य छुपे हुये बौद्ध थे। यह बात कहाँ तक सच और कहाँ तक झूंठ है .इसके विषय में हम अपना मुँह नहीं खोलना चाहते। केवल इतना ही बता देना उचित समझते हैं कि बुद्ध धर्म का शुभ सिद्धान्त, जिससे मनुष्य जीवन की गढ़त होती है, वही वेदान्त है। संक्षेप के साथ वह कहानी पढ़ने वालों को रोचक बनकर आप समझा देगा। अधिक कहने सुनने की आवश्यकता न रहेगी।

शिव

———

शाहवार मोती

पहिला भाग

पहिला अध्याय

अधमरा

अभी इसमें जान बाकी है।

शरीर तो एक दम ठंडा हो गया है। यह मर चुका है परन्तु इसे मरे हुए बहुत देर नहीं हुई। सम्भव है घण्टों ही हुए हों। लाश किसी ने नदी में बहा दी और लहरों ने लाकर यहाँ डाल दिया।

नहीं पिता जी! यह मरा नहीं है।

तू ने कैसे जाना?

मैं ने इस के सर की चोटी पर हाथ फेरा। थोड़ी सी गर्मी मालूम होती है।

तू बड़ी निडर है। लड़कियाँ तो मुर्दों का नाम सुन कर चिल्ला उठती हैं। लाश के हाथ लगाने का साहस उन्हें कब होने लगा।

आप भी देख लीजिये।

बहुत अच्छा!

और वह लाश के पास आया।

बात चीत करने वाले दो आदमी थे। एक साधू था, जिसे सब अवधूत कहते थे। दूसरी १४ साल की एक महा रूपवती लड़की थी। अवधूत उसका नाम था या वह इस पन्थ का साधू था, इसका उत्तर नहीं दिया जा सकता। सम्भव है वह दोनों ही रहा हो लेकिन अवधूत विरक्त, त्यागी और अवघड़ होते हैं। लड़के बालों के साथ उनका सम्बन्ध नहीं होता। देखने में तो वह साधू ही प्रतीत होता था। लड़की के साथ उसे प्रेम भी था। अजनबी आदमी उन्हें बाप बेटी समझते थे परन्तु वास्तव में उन में यह सम्बन्ध नहीं था।

अवधूत लड़की की बात सुन कर मुर्दे की ओर बढ़ा, उसे टटोला, शरीर में जान नहीं थी परन्तु सर पर हाथ फेरने से उसे भी लड़की की तरह विश्वास हो गया कि यह एक दम मरा नहीं है। फिर गहरी दृष्टि से देख कर बोला। विशाखा! यह मरा नहीं है। तेरा विचार बहुत ठीक है।

विशाखा—मैं भी ऐसा ही समझती हूँ।

अवधूत—तो अब क्या करना चाहिये?

विशाखा—प्राण रक्षा करना पुण्य है। इसे किसी तरह जिलाइये।

अवधूत हँसा - क्या मेरे भाग्य में ऐसा ही लिखा है कि गंगा के किनारे रहकर लोगों को जिलाया करूँ?

विशाखा—इस में हर्ज ही क्या है? जिलाना पुण्य है, मारना पाप है। आप जैसा किसी का भाग्य कहाँ है! प्राणदाता होना प्रत्येक मनुष्य का काम नहीं है।

अवधूत—इसने नदी में डूब कर आत्म हत्या नहीं की। किसी शत्रु ने इसे जहर दे दिया और अपनी समझ में मुर्दा जान कर पानी में डाल गया। यदि लहरों ने इसे किनारे न डाल दिया होता तो मछलियाँ इसे नोच खसोट कर अब तक

खा जातीं। अनुमान से पता लगता है कि इसे अभी कुछ दिनों तक जीना है।

विशाखा—ईश्वर ऐसा ही करे! परन्तु आप कैसे कहते हैं कि इसे विष दिया गया है?

अवधूत—होठों पर सियाही के साथ नीलापन आ गया है और नाखून भी नीले और काले पड़ गये हैं।

विशाखा—सम्भव है इसे साँप ने काट खाया हो!

अवधूत ने बड़ी सावधानी के साथ उसके शरीर को देखा, उसे उलट पलट कर एक एक अंग को देखा भाला।

साँप ने इसे नहीं काटा। या तो इस ने आप विष खा लिया है या किसी ने खिलाया है। पहिली दशा में यह आप पानी में गिरा होगा और दूसरी अवस्था में इसके शत्रुओं ने नदी में डाल दिया होगा।

विशाखा—यदि विष अपना काम कर गया है तब तो इस का जीना असम्भव है।

अवधूत—कुछ कहा नहीं जा सकता।

विशाखा—इसने किस प्रकार का विष खाया है? इसका पता कुछ आप को मिल सकता है?

अवधूत ने फिर गहरी दृष्टि से लाश को देखा—

इसने अफीयून खाई है। रंग रूप से तो ऐसा ही पता लगता है और यह मामूली घर का आदमी नहीं है, किसी बड़े ऊँचे और धनाढ्य घराने का है।

विशाखा—मैं भी ऐसा ही समझती हूँ। अब किसी तरह इसे जीवन प्रदान कीजिये?

अवधूत—कोई बात समझ में नहीं आती। यहाँ कोई दवा भी तो नहीं है। पानी की ठंडक ने इसे जिला रक्खा था नहीं तो यह अब तक कभी जी न सकता। तू बता मैं क्या करूँ?

होता है कि अमुक चीज खिलाने से रोग हट जायगा और वह उसे खिला भी देते हैं। अब तो तू समझ गई होगी।

विशाखा प्रसन्न हो गई—हाँ ? मैं समझ गई।

अवधूत—यह गुण तुझ में स्वाभाविक है।

इतनी ही बात होने पाई थी कि मुर्दे ने अंगड़ाई ली और उसके मुँह से जोरदार पिचकारी की धार की तरह पेट का विकार बाहर की ओर निकल पड़ा। उसने तीन चार बार क़ै की और साथ ही कराहने लगा।

जान बच गई। क़ै की छींटें विशाखा और अवधूत के कपड़ों पर अधिकता के साथ पड़ीं। वह फिर अचेत और बेसुध हो गया। दोनों ने शरीर को टटोला। अब गर्मी आगई थी और नाड़ी भी चलने लगी थी।

विशाखा ने फिर वह दवा दोने में घोली। अवधूत ने उसे पिलाया। इस बार भी जोर के साथ क़ै हुई। हरे पीले पानी में बड़ी ही दुर्गन्धि थी। अब वह व्याकुल होकर ज़ोर के साथ कराहने लगा। क़ै होते ही फिर मूर्च्छा आगई।

विशाखा ने तीन बार और दवा पिलाई और तीनों ही बार क़ै हुई। सब कुछ हुआ परन्तु उसकी मूर्च्छा दूर नहीं हुई। मृत्यु का भय तो अब जाता रहा और जीवन की आशा दिखलाई देने लगी।

बेचारे सुबह ही सुबह नहाने के लिये आये थे परन्तु इस दवा इलाज में दिन के तीन पहर बीत गये और उन्हें नहाने का अवसर नहीं मिला।

अवधूत ने पूछा—बेटी ! तू ने इसे क्या दवा पिलाई थी ?

विशाखा हँसी—कुछ नहीं ! यह मुर्ग़ का बीट था। मेरे मन में एकबारगी यह बात आगई कि इसी के खिलाने से इस की जान बच जायगी। मैं दौड़ी दौड़ी चली गई और उसे ले आई।

ईश्वर को लाख लाख धन्यवाद है कि इस ने अपना काम किया। अब यह बच गया। धीरे धीरे मूर्च्छा भी जाती रहेगी

अवधूत—अब इसके बच जाने में कोई सन्देह नहीं है इस समय और कोई दवा काम नहीं करती।

विशाखा—तब इसे कुटी में ले चलिये। दिन डूबना ही चाहता है। रात की सर्दी से इसे बचाना चाहिये।

दोनों नहाये, कपड़े धोये। कोई आदमी पास नहीं था क्योंकि घाट की जगह सूनसान थी। आस पास कोई आबादी भी नहीं थी। दोनों बस्ती से दूर रहते थे। किसी से सहायता लेने का समय नहीं था न यह इच्छा ही थी। अवधूत ने लड़की की सहायता से उसे उठाया और अपनी पीठ पर लादा। लड़की भी सहारा दिये हुये थी जिस में वह गिरने न पाये। इस तरह धर पकड़ करके वह उसे कुटी में उठा लाये, पृथ्वी पर फूस बिछा कर उसे लिटा दिया, ऊपर से कम्बल ओढ़ाया और आप खाना पकाने के काम में लगे। दोनों ही प्रसन्नचित थे क्योंकि उन को उसके जीने की पूरी पूरी आशा होगई थी।

दूसरा अध्याय

कुटी

दरिया के किनारे सूनसान मैदान में अवधूत की कुटी थी। स्वभावतः वह स्वतन्त्र वृत्ति का मनुष्य था। कई वर्षों से वह यहाँ रहने लग गया था। कुटी फूस की झोपड़ी थी। उसके चारों ओर अधिकता के साथ फल फूल और साग पात की क्यारियाँ थीं। किनारे किनारे काँटे कटीले और थूहड़ की झाड़ी थी। यह इसलिये कि कोई पशु इस के भीतर न आसके

परन्तु बस्ती न होने के कारण कोई पशु इधर आता ही नहीं था। एक कुत्ता रखवाली का काम किया करता था। दिन को चाहे वह कहीं रहे सन्ध्या समय वहाँ आ जाता था और रात भर पहरा दिया करता था। अवधूत फल फूल और दूध के सिवा कुछ नहीं खाता था। लड़की का आहार भी यही था। तीन चार बछड़े वाली गायें रख छोड़ी थीं। वह दिन भर इधर उधर चरा करती थीं। सन्ध्या समय जब चर कर आ जाती थीं विशाखा तूँबों में उन का दूध निचोड़ लेती और यह पी लेते। कुत्ते को भी इसका हिस्सा मिला करता था और वह इसी लालच से वहाँ पड़ा रहा करता था। कभी कभी महीनों पीछे कोई गृहस्थ भक्त आजाते थे। अवधूत कपड़ों के अतिरिक्त उन से और किसी प्रकार की भेंट नहीं लिया करता था। उस का जीवन सीधा सादा था और इसी लिये उसकी आवश्यकतायें भी बहुत थोड़ी थीं।

प्रातः काल उठे, पूजा पाठ स्नान ध्यान से छुट्टी पाई, बाग में आराम किया, दोपहर को दूध पी लिया या जी चाहा तो फल फूल और कन्द से तृप्ति कर ली। फिर धर्म पुस्तकों के पढ़ने में लग गये। उस समय आज कल की तरह पुस्तकों की भर मार नहीं थी और न कागज ही अधिकता के साथ देखने में आते थे। दो चार दस ताड़ के पत्तों पर लिखी हुई पुस्तकें थीं। इनमें कुछ तो अवधूत की कुटी में रक्खी रहती थीं और कुछ विशाखा की झोंपड़ी में। दोनों अलग अलग रहते थे। केवल नहाने के लिये नदी पर साथ साथ जाते थे। खाना भी मिलकर खाते थे। पढ़ने पढ़ाने के समय भी इकट्ठे हो जाते थे; इसके अतिरिक्त वह अलग ही अलग रहते थे। हाँ! जब कोई काम काज करना पड़ता था तब वह एक दूसरे के साथ हो जाया करते थे। साधारण रीति से एक को दूसरे से कोई काम

नहीं रहता था। दोनों का जीवन पवित्र था और वह देवी और देवता की हैसियत में वहाँ रहते थे।

इस अवसर पर रोगी की देख भाल का काम विशाखा के सुपुर्द हुआ और उसे उसी की कुटी में जगह दी गई। रात भर वह अचेत रहा, सुबह उठते ही उसने खाना माँगा परन्तु आँखें पहिले की तरह बन्द थीं। उसे सुध भी नहीं थी कि कहाँ हैं और कहाँ नहीं हैं। विशाखा ने तूँबे से उसे दूध पिलाया। उसने पी लिया। यहाँ तक तो उसे सचेत कहा जा सकता है। बस! इसके अतिरिक्त उसे कुछ भी पता नहीं था। दूध पीकर जो वह सोया तो दिन भर अचेत पड़ा रहा। दिन डूबने के समय उसने फिर खाने को माँगा। दूध के सिवा और यहाँ क्या था जो उसे दिया जाता। अवधूत का हुक्म था कि यह जितना दूध पिये बराबर पिलाया जाये—इसीसे विष दूर होगा। रात के समय लड़की ने कई बार उठ कर उसे दूध पिलाया और वह पी पी कर सो रहा।

दूसरे दिन उसकी आँख खुली, उठा और अपने आप को झोंपड़े में देखकर हक्का बक्का हो गया। उसकी मूर्च्छा दूर हो गई थी। जब विशाखा कुटी में आई उसे देखकर वह चकित हुआ, पूछा– मैं कहाँ हूँ? यह जगह कैसी है? तू कौन है? और मैं कैसे यहाँ आ गया?

विशाखा ने उत्तर दिया—तुम गंगा के किनारे साधु के झोंपड़े में हो। मैं साधु की लड़की हूं। तुम गंगा के किनारे मुर्दा पड़े हुए थे। मैं नहाने गई, तुम्हारा दवा इलाज किया, अच्छे हो गये, यहाँ उठा लाई। इसके अतिरिक्त मुझे और किसी बात का पता नहीं है।

अजनबी—यह झोंपड़ा किसी साधु का है या किसी भिक्षु का है?

विशाखा—मैं साधु और भिक्षु का भेद नहीं जानती। मेरी समझ में तो दोनों का एक ही अर्थ है।

अजनबी—जो सत् सनातन वैदिक धर्म के अनुसार साधन को व्रत धारण करते हैं वह साधु हैं और जो इस प्राचीन धर्म के विरुद्ध नये मत के अनुसार गेरुआ कपड़ा पहिन लेते हैं वह भिक्षु कहलाते हैं।

विशाखा—जो महात्मा यहां रहते हैं उन्हें लोग अवधूत कहते हैं और यह कुटी उन्हीं ही ने बनवाई है।

अजनबी—बहुत अच्छा हुआ! अवधूत वैदिक धर्म के अनुयायी होते हैं।

विशाखा—आप की बात मेरी समझ में नहीं आई।

अजनबी—सुन्दरी! मैं शैव मत का अनुयायी हूं, वेदान्ती हूँ। यदि किसी भिक्षु ने मेरी जान बचाई होती तो मुझे महा दुःख होता। ऐसे जीने से मुझे मर जाना अच्छा है। इस दृष्टि से मैं तेरी बात सुन कर प्रसन्न हो गया।

विशाखा ने समझ लिया कि यह मनुष्य आर्य्य धर्म (बुद्ध धर्म) का कट्टर विरोधी है, बोली—"तुम में अभी बात चीत करने की भी पूरी शक्ति नहीं है। दूध पीकर चुपचाप सो रहो। अधिक बात चीत करने से मूर्च्छा आ जायेगी।"

उसने उसे दूध पिलाया और सुला दिया। वह दिन किसी तरह बीत गया। विशाखा ने उसे कई बार दूध पिलाया और वह दिन रात सोता रहा। दूसरी सुबह जब वह उठा, विशाखा फिर दूध लाई। आज उसको अपने नित्य कर्म का ध्यान आया, नहाने धोने और पूजा पाठ करने को सूझी। विशाखा उसे गंगा के किनारे ले गई। नहा कर उसने स्तोत्र पढ़े और फिर कुटी में आया। इतनी देर में अवधूत और विशाखा भी नित्य कर्म से निवृत्त हो गये थे। अब तीनों एक साथ वहाँ बैठे।

अवधूत ने पूछा – तुम कौन हो ?

उसने उत्तर दिया—अभी मेरे होश हवास ठिकाने नहीं हैं कमजोरी बहुत है। चित्त ठिकाने हो तो मैं आपको अपना हाल सुनाऊँ।

अवधूत—मेरा मतलब और कुछ नहीं है। मैं इसलिये पूछ रहा था जिसमें तुम्हें तुम्हारे घर पहुंचा सकूँ। मेरा अभिप्राय केवल इतना ही है।

अजनबी—मैं इसे समझता हूँ। आप ने मेरी जान बचाई है। मेरे साथ उपकार किया है। आप को इन बातों के पूछने का अधिकार है और मेरा भी धर्म है कि अपना हाल आपको सुना दूँ।

अवधूत—न मुझे किसी बात का अधिकार और न तुम बन्धन में हो। साथ ही मैंने न तुम्हारी जान बचाई न तुम्हारे साथ उपकार किया। यदि यह बात किसी के विषय में कही जा सकती है तो वह केवल विशाखा यह लड़की है जो तुम्हारे सामने खड़ी है। इस ने तुमको दरिया के किनारे पड़ा हुआ देखा, मुझे बतलाया। तुम बेजान थे और बेजान समझ कर मैंने लाश को हाथ लगाना उचित नहीं समझा। इसने तुम्हारे शरीर और सर पर हाथ फेरा। सर में थोड़ी सी गर्मी मालूम हुई, दौड़ धूप की, दवा लाई और उस दवा ने तुम्हें बाल बाल बचा लिया। बाकी हाल तुम आप जानते हो।

अजनबी ने गहिरी दृष्टि से विशाखा को देख कर कहा—मैं किस मुँह से इन को धन्यवाद दूं और कृतज्ञता प्रकट करूँ। आप लोग इस समय इतना ही समझ लें कि मैं आपके उपकार के बोझ से एक दम दब गया हूँ। मैं धीरे-धीरे अपनी राम कहानी सुना दूंगा।

विशाखा इसकी बातों से प्रसन्न हुई। पहिले उसने समझ

लिया था कि यह कट्टर पक्षपाती और कृतघ्न है। धन्यवाद, उपकार और कृतज्ञता के शब्द सुनने से उसका विचार बदल गया। यह मनुष्य का स्वभाव है कि वह थोड़ी थोड़ी सी बातों से क्षण मात्र में कुछ का कुछ हो जाता है। पुरुषों में तो यह बात इतनी नहीं होती परन्तु स्त्रियों का हृदय विचित्र बनाया गया है। यह रहस्य विचारने ही योग्य है। ऐसा क्षण क्षण में परिवर्तन बिजली के कौंधे में भी नहीं दिखलाई देता। इस परिवर्तन के परदे में भी आश्चर्य जनक बातें छुपी रहती हैं जिन पर विचार करने से मनुष्य की बुद्धि चकरा जाती है। स्त्री एक साथ हँसती रोती रहती है। कभी यह इतनी नर्म होती है कि मोम से उपमा दी जाती है। कभी स्वभाव को इतना कड़ा बना लेती है कि पत्थर को भी लज्जा आती है। स्त्री से अधिक न किसी में बल है न शक्ति है। जिन्हों ने इसे शक्ति का नाम दिया है वह बड़े बुद्धिमान लोग थे। स्त्री मूर्ख है और स्त्री चतुर है। जब नादानी पर तुल जाती है तो फिर उस जैसा नादान कोई भी दिखाई नहीं देता और जब बुद्धिमानी की ओर झुकती है तो ऋषि मुनि देवी देवता देख कर दंग रह जाते हैं। पुरुष की स्त्री के साथ कोई बराबरी नहीं हो सकती। यह सचमुच माया है। यही प्रकृति है। यही प्रधान है। यही संसार का निमित्त कारण है। यही साधारण कारण है। इस स्त्री ही के खेल का नाम संसार है।

विशाखा अभी छोटी लड़की थी। उसे दुनियाँ का तजरबा बहुत कम था परन्तु थी बड़ी सोच समझ वाली। जब वह किसी गुत्थी के सुलझाने पर आती थी, बड़ी बुद्धिमानी का काम कर दिखाती थी। हमारे अवधूत जैसे अनुभवी पुरुष को भी चकित होना पड़ता था। इस अजनबी मनुष्य के देखने से उस के हृदय में क्या भाव उत्पन्न हुआ उस का लिखना महा

कठिन है। वह चुप चाप सर झुकाये हुये उसे देख रही थी और उस की बातों को सुनकर मन ही मन विचारती भी जाती थी। इस समय उसकी विचित्र अवस्था थी।

अवधूत ने सब को चुप देख कर कहा—अच्छा! तुम उस समय तक यहाँ रह सकते हो जब तक चलने फिरने की शक्ति नहीं आजाती। यहाँ हम दोनों वर्षों से रहते हैं। यदि कोई भूला भटका इधर आजाता है तो हम उसको अपनी तुच्छ सहायता देकर राह पर लगा देते हैं। घंटों से अधिक यहाँ किसी को ठहरने की आज्ञा नहीं है। तुम्हारी दशा और है। इसलिये तुम्हारे लिये यह बन्धन नहीं रक्खा जाता। दो चार दिन के लिये कोई बात नहीं है।

अजनबी हंसा—मैं यहाँ जमकर रहने के लिये नहीं आया हूँ। कर्म का चक्र यहाँ लाया। मुझ में शक्ति आजाये तो फिर अपनी राह लूँगा।

इसका उत्तर साधू ने कुछ नहीं दिया। वह उठा और विशाखा की सहायता से उसने उसी समय फूस का तीसरा झोंपड़ा थोड़ी देर में बना दिया और उस में उसे लिटा दिया। विशाखा समय समय पर उसे दूध और फल फूल दे आती थी। इस के अतिरिक्त वहाँ था ही क्या। वह वहाँ एक सप्ताह तक ठहरा रहा।

तीसरा अध्याय

शुकदेव

दूध के पीते रहने से जो कुछ पेट में विष का विकार था वह धीरे धीरे निकल गया। अब उसमें उठने बैठने और चलने

फिरने की शक्ति आ गई। कहने के लिये तो तीन आदमी थे परन्तु बराबर अलग अलग रहते थे। केवल आवश्यकता के समय उन में बात चीत होती थी। विशाखा और अवधूत ने पठन पाठन के लिये समय नियत कर रक्खा था। हमारा अजनबी बेकार रहते रहते एक दम घबरा गया। वह चाहता था कि विशाखा से बात चीत करता रहे परन्तु अवधूत के भय से उसे साहस नहीं होता था। विशाखा की भी यही इच्छा रहती थी परन्तु उसे भी अवधूत का ध्यान था। दोनों ही उसे अप्रसन्न करना नहीं चाहते थे।

एक सप्ताह ज्यों त्यों बीत गया। आठवें दिन वह अवधूत के पास आया और जाने की आज्ञा माँगी।

अवधूत ने कहा—तुम को अधिकार है। मेरा जीवन और प्रकार का है। तुम्हारी अवस्था और है। जाओ, अपने काम धन्धे में लगो। बेकारी अच्छी नहीं होती, और तो मैं कुछ कहता नहीं, मेरा यह उपदेश याद रखना, बेकार कभी न रहना।

अजनबी—मैंने निवेदन किया था कि चलने से पहिले अपना हाल आपको सुना जाऊँगा। इसलिये आपकी आज्ञा चाहता हूं।

अवधूत—मेरी ओर से न कोई हठ है न कोई इच्छा है। मैंने समयानुसार तुम्हारा नाम और पता पूछा था। यदि तुम उचित समझो तो कहो, मैं सुन लूँगा।

अजनबी—मेरा नाम शुकदेव है। मैं जाति का ब्राह्मण हूं। पटना के पास रामगढ़ नाम का एक गाँव है। मेरा बाप उसका जमींदार है। जब मैं छोटा ही था मेरी माँ मर गई। बाप ने दूसरा विवाह किया। यह विवाह मेरे लिये दुख का कारण हो गया। मेरी सौतेली माँ के एक लड़का है। उसको रामदेव कहते हैं। बाप को मेरा ध्यान रहता है परन्तु माँ ने उसे अपने वश

में कर रक्खा है। माँ नहीं चाहती कि मैं घर में रहूं। वह रामदेव को बाप के घर बार और जायदाद के मालिक की हैसियत में देखना चाहती है। मुझ पर बड़े बड़े अत्याचार हुए। मैं उन्हें सहता रहा। मैं घर में सुखी नहीं हूँ। पढ़ा-लिखा, सब कुछ किया। रामदेव की शिक्षा भी अच्छी नहीं है। इस पर भी वह माँ बाप की आँखों का तारा बना हुआ है। बाप यह नहीं चाहता कि मुझे दुख हो परन्तु माँ दिन रात पीछे पड़ी रहती है। मेरा विचार है कि माँ ने किसी न किसी तरह मुझे विष खिला दिया। जब मैं अचेत हो गया हूँगा लोग मुर्दा समझ कर मुझे गंगा में डाल गये होंगे। आप ने मेरी जान बचाई। यह मेरी राम कहानी है।

अवधूत—तुम्हारी दशा महा शोचनीय है, सुनकर रोंगटे खड़े हो जाते हैं। क्या तुम फिर भी घर जाना चाहते हो?

शुकदेव—घर के अतिरिक्त और कहीं मेरा ठिकाना नहीं है। मैं कभी घर से बाहर नहीं निकला। जीवन में यह पहिली घटना है कि मैं यहाँ आ गया और वह भी अपनी इच्छा से नहीं।

अवधूत—क्या वहाँ फिर कोई और दुर्घटना न होगी?

शुकदेव—इसका उत्तर मैं क्या दूँ? जो जिसके कर्म में लिखा रहता है होकर रहता है। इससे किसे बचाव है। हाँ! अब मुझे सावधानी के साथ बहुत बचकर रहना होगा।

अवधूत—बहुत अच्छी बात है। फिर तुम जा सकते हो।

शुकदेव—जाने को तो मैं जाऊँगा क्योंकि मेरा विचार ऐसा ही है। यदि आप कुछ उपदेश करें तो मैं उसे याद रक्खूँगा और उसी के अनुसार जीवन व्यतीत करने का यत्न करूँगा।

अवधूत—तुम आप समझदार मालूम होते हो। अपने लिये आप युक्तियाँ सोच सकते हो।

शुकदेव—यह सच है। मनुष्य उच्च दृष्टि न होने के कारण भूल चूक कर बैठता है। बड़ों का उपदेश उसे चौकन्ना बना रखता है।

अवधूत—उपदेश का सम्बन्ध अधिकार से है। तुम बेबसी की दशा में थे। तुमको सहायता पाने का अधिकार था। विशाखा ने प्रकृति माता की ओर से तुम्हें सहायता दी और तुम भले चंगे हो गये। इसी प्रकार जब तक यह पता न लगे कि तुमको अधिकार प्राप्त है उस समय तक तुम्हें उपदेश देना व्यर्थ और निरर्थक होगा।

शुकदेव—मैं आपका मतलब समझ गया यदि आज्ञा हो तो कुछ निवेदन करने का साहस करूँ।

अवधूत—तुम्हें रोका किसने है? मैंने तो रोका नहीं। जो कुछ कहना चाहो, कहो।

शुकदेव—संसार में चार प्रकार के अधिकारी होते हैं (१) ज्ञानी (२) जिज्ञासु (३) अर्थार्थी (४) आर्त। ज्ञानी तो वह हैं जो केवल असलियत के जानने और समझने की इच्छा रखते हैं। वह और बातों की ओर ध्यान नहीं देते। उनका ध्यान केवल असलियत पर रहता है। जिज्ञासु वह हैं जो छान बीन और प्रश्नोत्तर करते हुए सच्चाई की खोज में लगे रहते हैं। अर्थार्थी किसी अर्थ के लिये गुरु की शरण में आता है। उसका अर्थ पहिले सिद्ध हो ले फिर वह सत् की जिज्ञासा में लगेगा—जैसे एक मनुष्य भूखा है, जब तक उसे भूख लगी हुई है तब तक वह रोटी प्राप्ति के प्रयत्न में लगा रहेगा। रोटी की ओर से इतमीनान हो जाने पर फिर उसे और किसी बात की सूझेगी। आर्त वह है जो दुःख में घबरा कर शरण में आता है। उसे शरण मिल जाये। फिर जब उसका चित्त ठिकाने पर आयेगा तब वह परमार्थ की ओर ध्यान देगा।"

अवधूत—हँसा। तुम पढ़े लिखे आदमी हो। शास्त्रों के रहस्य को समझते हो। अब तुम ही बतलाओ कि तुम किस प्रकार के अधिकारी हो ? तब मैं तुम्हारे प्रश्न का उत्तर दूं।

शुकदेव मैं अर्थार्थी हूं।

अवधूत—कैसे ?"

शुकदेव—'ज्ञानी तो मैं हूँ नहीं क्योंकि ज्ञान होता तो आप से ऐसी बातें न करता और न मैं जिज्ञासु हूँ क्योंकि जिज्ञासु वह होते हैं जो ब्रह्म के विषय में छान बीन करते रहते हैं। साथ ही मैं आर्त भी नहीं हूँ। आर्त की दृष्टि शरणागत होने की होती है। यदि मैं दुःखों से घबरा कर आपकी सेवा में पड़ा रहना चाहता तो आर्त कहलाता। मैं आपसे बिदा होना चाहता हूँ। इससे पता लग सकता है कि मेरी इच्छा यहाँ रहने की नहीं है। मैं स्पष्ट शब्दों में अर्थार्थी हूं।

अवधूत ने शुकदेव की ओर गहिरी दृष्टि से देखा—जैसे तुम ने तीन तरह के अधिकारियों की व्याख्या कर दी है वैसे ही इस चौथे की व्याख्या क्यों नहीं की ? इसका बतलाना तो आवश्यक था।

शुकदेव—मैं इसे कह चुका। भूखा बंगाली भात भात ! मुझे अर्थ की आवश्यकता है। मैं अर्थ चाहता हूँ।

अवधूत—इस अर्थ से तुम्हारा क्या मतलब है ?

शुकदेव—अर्थ से मेरा मतलब धन और दौलत से है। मुझे धन दौलत मिल जाये फिर मैं और किसी ओर ध्यान दूँ।

अवधूत हँसा—क्या तुम को विश्वास है कि मेरे यहाँ से धन द्रव्य मिल सकता है ?

शुकदेव—विश्वास न होता तो आपके सामने कभी मुँह भी न खोलता।

अवधूत मुसकराया—बाबा। फकीर के पास क्या धरा

हुआ है कि तुझे दे दिला सके।"

शुकदेव--यदि मैं यहाँ से निराश गया तो जीवन पर्यन्त निराश ही रहूंगा। किसी महान् शक्ति ने मुर्दा बना कर मुझे यहाँ किसी विशेष काम के लिये पहुँचाया है। इसमें कोई न कोई भेद है जिसे मैं नहीं जानता परन्तु चित्त उसे अनुभव कर रहा है। वह क्या बात है जिसने मुझे मुँह खोलने के लिये मजबूर किया मैं नहीं समझ सकता। जब मेरी समझ ने धोखा खाया तब मैं ने आप के सामने रुपयों का सवाल छेड़ा।

अवधूत—तो इसका आशय यह है कि वास्तव में तुमको रुपयों की आवश्यकता नहीं है। तुमने इसे अपनी दबी और छुपी हुई इच्छा के प्रकट करने का बहाना बनाया है।

शुकदेव—दोनों बातें हैं। मुझे रुपये की आवश्यकता है और साथ ही सम्भव है कि यह रुपया मेरे मनोरथ की सिद्धि में सहायक भी हो जिसका मुझे ज्ञान नहीं है।

अवधूत बुद्धिमान और दूरदर्शी था। पाँच सात मिनट सोच कर बोला—तुम घर के जमींदार हो। तुम्हें रुपये की तंगी न होनी चाहिये। मैं फ़क़ीर हूँ। मेरे पास रुपया कहाँ से आया! यह तुम आप समझ सकते हो। क्या तुम कुछ बतला सकते हो कि इस रुपये को ले जा कर तुम क्या काम करोगे?

शुकदेव—यही तो रहस्य है जो मुझ पर नहीं खुलता। हाँ, इतना कहने का साहस करता हूँ कि इस रुपये से जमींदारी खरीदूंगा, अपना विवाह करूँगा और अलग घर बनवाकर रहूँगा। माँ बाप के साथ मैं नहीं रह सकता और कौन जाने वहाँ पहुँचने पर मेरे साथ कैसा सलूक किया जाये!

अवधूत—अभी तक तुम्हारा विवाह नहीं हुआ?

शुकदेव—जी नहीं!

अवधूत—कहीं बात चीत हुई है?

शुकदेव—बात चीत एक जगह से हुई थी। पिता जी को पसन्द भी था क्योंकि वह बड़ा मालदार घराना है। माता जी ने टालमटूल कर रक्खा है। वह ऐसा क्यों कर रही हैं इसे वही जानती होंगी।

अवधूत—तुम्हारे भाई की क्या अवस्था है?

शुकदेव—वह सोलह वर्ष का है। मैं उस से दो साल बड़ा हूँ।

अवधूत—कहीं वह इसी लड़की के साथ अपने बेटे का विवाह करना तो नहीं चाहती! सम्भव है यही बात हो!

शुकदेव की आँखों के सामने माँ की सारी बदसलूकियाँ बाइसकोप की तसवीरों की तरह आती गईं। उसने सोच विचार कर उत्तर दिया—"अनुमान कहता है कि आपका विचार ठीक होगा।"

चौथा अध्याय

विशाखा

जब यह बातें दोनों में हो रही थीं, विशाखा अपने झोंपड़े से आई। अंतिम वाक्य उसने सुन लिया। दोनों ने उसे देखा। अवधूत की आज्ञा पाकर वह बैठ गई।

अवधूत ने कहा—शुकदेव! तुम समझ बूझ वाले हो। मुझे तुम्हारे साथ सच्ची सहानुभूति है। यदि मेरे पास रुपया होता तो मैं अवश्य तुम को दे देता। इस जीवन में न धन द्रव्य इकट्ठा करने का लालच है और न मैं यह झमेला कभी पालूँगा। समझ में नहीं आता तुम ने क्यों ऐसी प्रार्थना मुझ से की है।

शुकदेव—आप चिन्ता न कीजिये। नहीं है तो न सही। मैं

आपके पास धन माँगने के लिये तो नहीं आया था। मैं आप चकित हूं कि क्यों ऐसे बे-सर-पैर की बातें आप से कर रहा हूँ और मेरे मन में कौनसी शक्ति है जो अन्दर बैठी हुई यह बातें करा रही है? इसमें कोई न कोई रहस्य होगा। मेरा मन कहता है:—

तीरथ गये तो एक फल, संत मिले फल चार।
सतगुरु मिले अनेक फल, कहें कबीर विचार॥

सब को विश्वास है कि साधु संत के दर्शन से चार फल अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष मिलते हैं। अर्थ, धन, द्रव्य और दौलत है। धर्म शास्त्रों की आज्ञानुसार चलना है। काम कामना या इच्छा है और मोक्ष मुक्ति है। यह चारों संतों के दर्शन से प्राप्त होते हैं। सम्भव है यह सच हो। सम्भव है यह झूठ हो। सम्भव है यह सच और झूठ दोनों हो। इस पर भी आप के साथ शास्त्रार्थ या वाद विवाद करना नहीं चाहता। मुझे गाँव में सब लोग कठ हुज्जती कहते हैं। यदि आप रुपये से मेरी सहायता नहीं कर सकते तो जाने दीजिये। मुझे आज्ञा दीजिये मैं घर चला जाऊँ।

अवधूत चुप हो रहा।

विशाखा ने उससे पूछा—यह कितना रुपया माँगते हैं?

अवधूत के मन में लड़की के इस प्रश्न से नाना प्रकार के विचारों की तरंगें लहराने लगीं। कितनी पुरानी घटनाओं के दृश्य उसकी आँखों के सामने दम के दम में आ गये। उसने उत्तर दिया—मुझ को रकम नहीं बताई गई।

शुकदेव बोल उठा—मुझे दो हजार रुपये मिल जाते तो मेरा काम निकल जाता।

विशाखा ने अवधूत की ओर और अवधूत ने विशाखा की ओर दृष्टि की। दोनों की आँखें आपस में बात चीत करने लग

गई। आँख आँख से बोलती हैं इसका ज्ञान मनुष्य को होना चाहिए। मनुष्य तो मनुष्य है। पशु पशुओं के साथ, मनुष्य पशु के साथ और पशु मनुष्य के साथ आँखों की सहायता से बातचीत करते हैं। आँख, जिह्वा और कान दोनों का काम देती हैं। आदमी आदमी के साथ यदि चाहे तो आँख से बोले और आँख से ही सुने। आँख की बोलचाल में शब्दों की आवश्यकता नहीं पड़ती। मन के मानसिक भाव और विचार की धार एक की आँख से निकल कर दूसरे की आँख में समा जाती है और बिना मुँह खोले हुए एक के भाव को दूसरा समझ जाता है।

विशाखा उठी, पन्द्रह मिनट के लिये वहाँ से चली गई। इस बीच में अवधूत और शुकदेव दोनों ही चुप चाप थे। वह आई और एक पोटली को लाकर अवधूत के सामने रख दिया उसने शुकदेव की ओर आँख उठाई। उसने उसे खोला। पूरे दो हजार रुपये की अशरफियाँ उसमें निकलीं।

अवधूत ने कहा--शुकदेव! विशाखा ने तुमको जान दी और अब तुम्हारी जीविका के लिये यह रकम दे रही है। यही इसकी कुल पूँजी है। मेरे पास एक पैसा नहीं है। मैंने तुम से झूठ नहीं कहा था। मैं फकीर हूँ और सच्चे अर्थ में सच्चा फकीर हूं। वर्षों हो गये मैंने रुपये पैसे की सूरत तक नहीं देखी, न उन्हें हाथ लगाया, और न उनकी मुझे आवश्यकता है। यदि तुम्हारा काम इनसे निकलता है तो मेरी ओर से नहीं किन्तु विशाखा की ओर से इन्हें ले जाओ और अपने काम में लाओ।

शुकदेव--क्या वह रुपया मुझे उधार के ढंग पर दिया जा रहा है?

अवधूत--इस प्रश्न के उत्तर की आशा मुझ से न रक्खो। यह उस से पूछो जिसने तुमको दिया है।

शुकदेव अभी कुछ पूछना ही चाहता था कि विशाखा बोल उठी—ऋण देना अपने आप को और लेने वाले को बन्धन में फँसाना है। आप से मैंने सुन रक्खा था कि यह मेरा रुपया है। इस समय मुझे काम तो है नहीं। यह ले जायें। इस से अपना काम निकालें। मैं न इसका सूद चाहती हूँ न असल चाहती हूँ। रुपया इस लिये है कि वह किसी के काम आये। रखने के लिये तो कंकड़ पत्थर और जवाहिर सब एक जैसे हैं। इन्हें आवश्यकता है। यही इस के सच्चे अधिकारी हैं।

शुकदेव के हृदय पर लड़की की उदारता का बहुत ही गहिरा प्रभाव पड़ा। उस ने कहा—महाराज! मैं एक लड़की का माल इस तरह लेना पसंद नहीं करता। यह लड़की नहीं देवी है। मेरा प्रश्न तो आप से था। इस से नहीं था।

अवधूत हँसा—लोग ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि उन की मनोकामना पूरी हो परन्तु आज तक ईश्वर को किसी ने किसी को देते हुये नहीं देखा। वह जब देने पर आता है किसी के बहाने से दिलाता है। इस समय भी तुम ऐसा ही समझो। अब तुम्हारा काम हो गया। जाओ अपने घर की राह लो।

शुकदेव—महाराज का कहना सच है। ईश्वर किस प्रकार माँगने वालों की आवश्यकता पूरा करता है। मैं आपके श्रीमुख से सुनना चाहता हूं।

अवधूत मुसकराया—सुनो:—कोई अन्धा साधु दिन भर शिवालय में रह कर भीख माँगा करता था। रात के समय एक बनिया शिवजी की पूजा करने आया। यह धनवान था। पार्वती जी शिवजी से बोलीं—"महाराज! वर्षों से यह साधु आप के द्वार पर पड़ा है। इसे कल एक लाख रुपये अवश्य दीजिये।" शिवजी ने उसी समय अपने लड़के गणेश से कहा—"देखो! कल सायंकाल तक इस भिकमंगे को लाख रुपये

मिल जाये। पार्वती जी का बचन खाली न जाने पाये।" गणेश जी बोले—"कल शाम को एक लाख रुपया भिकारी के पास पहुँच जायेगा।" बनिया ने देवताओं की बातें सुनीं। दूसरे दिन निकलते ही मन्दिर में पहुँचा और भिखारी से कहा—'पांच रुपये लो और आज जो कुछ तुम को मिले वह हमारा।" भिखारी को सन्देह हुआ। बनिये ने दस, बीस, सौ और हजार तक की लालच देकर उसे मनाना चाहा परन्तु उसने एक न सुनी। अन्त में जब बनिये ने कहा—"अच्छा पचास हजार रुपये इसी समय तुम्हारे घर भिजवा देता हूँ तब तो राजी होगे ?" इस पर भी वह नहीं मानता था। ठीक इसी समय उसकी स्त्री आगई। उसने समझा बुझा कर मना लिया और पचास हजार रुपये उसके घर पहुंचा दिये गये। शाम हुई। बनिया लाख रुपये की राह देखने लगा। वह नहीं आया। तब उसने भिकारी को लालच दे कर दस बजे रात तक रोक रक्खा। उस समय तक भी रुपये नहीं आये। तब उसने क्रोध में आकर गणेश की सूँड को झटका दिया—"क्या देवता भी झूठ बोलते हैं ?" उसके दोनों हाथ सूँड में फँस गये। वह महा व्याकुल हुआ। इधर भिखारी अपने घर चला गया था। बनिया अकेला रह गया। न हाथ छूटते हैं न वह जा सकता है। रात के समय उसे चोरों का भी भय था, रोने और गिड़गिड़ाने लगा। मूर्ति से आवाज आई—"पचास हजार रुपये दे चुका है, पचास हजार भिखारी के घर अभी पहुंचा दे तब तेरे हाथ छूटेंगे।" उस ने रुपया पहूँचाने का बचन दिया, तब सूँड़ की लपेट से उस के हाथ छूटे। वह दौड़ता हुआ घर आया। पचास हजार रुपये और उसी समय उसके घर पहुँचाये और अपने इस सौदे पर जीवन पर्यन्त पछताता रहा। देवता इस प्रकार एक दूसरे से दिलवाते हैं। ईश्वर लोगों के हृदय में बैठा हुआ प्रेरणा करता रहता है।

वही तुम्हारे मन में समाया हुआ है। उसी ने रुपये माँगने के लिये तुम्हारा मुँह खुलवाया और उसी ने विशाखा के हृदय में निवास करके तुम को यह रकम दिलवाई।

इस सनातनी कथा को सुनकर विशाखा और शुकदेव अपनी हँसी को न रोक सके।

शुकदेव ने पूछा—महाराज! क्या यह विशाखा आपकी लड़की नहीं है?

अवधूत ने उत्तर दिया—एक तरह पर तो यह लड़की ही है। मैंने विवाह नहीं किया। फिर लड़की कैसे होती? मैंने ईश्वर की प्रेरणा से इसका पालन पोषण किया है। इसलिये यह मेरी लड़की है।

शुकदेव—इसमें कोई न कोई रहस्य अवश्य है। यह आप को कैसे मिली?

अवधूत—प्रातःकाल में शौच के लिये जा रहा था। राह में मुझे एक सन्दूक मिला। मन में प्रेरणा हुई कि देखना चाहिए उसमें क्या है? खोलने पर यह लड़की निकली। मैं इसे कुटी में उठा लाया और इसे पाला पोसा। आज चौदह वर्ष से यह मेरे पास है। मैंने इसे संस्कृत और प्राकृत भाषा पढ़ाई। लड़की अच्छी है और विचारशीला है। सेवा करती है, इस लिये अब तक मेरे पास है। समय आयेगा जब यह चली जायेगी और मैं अकेला रह जाऊँगा।

शुकदेव—क्या आप जानते हैं यह किसकी लड़की है?

अवधूत—मैंने पता लगाया तब मालूम हुआ कि यह बड़े कुलीन ब्राह्मण की कन्या है। जब इसकी माँ अभी सौरी ही में थी, सौतेली माँ ने उसे अचेत और मूर्च्छित पाकर इसे जंगल में डलवा दिया परन्तु इस पर ईश्वर की दया थी। मेरे हाथ आ गई और अब तक जीती जागती है।

शुकदेव—यह अशरफियाँ क्या आपने इसे दी थीं ?

अवधूत—नहीं ! मैं बचपन ही से निर्धन साधु हूँ।

शुकदेव—फिर यह इसे कैसे मिलीं ?

अवधूत—किस्मत का खेल विचित्र होता है। ईश्वर की प्रभुता और दया समझ में नहीं आ सकती। यह अशरफियाँ उसी सन्दूक में थीं। पता लगता है—सौतेली माँ ने सोचा होगा कि जो कोई अशरफियाँ पावेगा इसका पालन पोषण करेगा। मैंने अशरफियों को पृथ्वी में गाड़ रक्खा था। जब यह समझ बूझ वाली हो गई इसके सुपुर्द कर दिया। यही उसकी मालिक है। इसे अधिकार है चाहे पास रक्खे या किसी को दे दे। यदि यह ब्रह्मचारिणी रहती तो इनकी इसे आवश्यकता न पड़ती और यदि गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करती तो अपने पति के पास ले जाती।

शुकदेव—क्या यह अपने माँ बाप का हाल जानती है और वह भी इसका हाल पा गये हैं ?

अवधूत—यह जानती है। माँ बाप को इसका पता नहीं है। सौतेली माता को इसके साथ द्वेष है और जड़ भरत की तरह मुझे भी इससे प्रेम है। इसलिये जब तक यह सयानी होकर अपनी रक्षा आप न कर सके मैं इसे अलग करना उचित नहीं समझता।

शुकदेव- यदि मुझे इसके माँ बाप का हाल मालूम हो जाता तो मैं उनसे मिलकर इसका हाल सुना देता ?

शुकदेव ने लज्जा से सर नीचा कर लिया। अवधूत उसके मानसिक भाव को भाँप गया और जब विशाखा की ओर आँख उठायी तो उसकी सूरत बदली हुई पाई। वह समझ गया कि इनके हृदयों में एक ही भाव काम कर रहा है और सम्भव है इनके मेल मिलाने का ईश्वर ने यही ढंग उचित समझा हो।

बहुत सी बातें संसार में ऐसी होती हैं जो मनुष्य की समझ से बाहर हैं। यहाँ फलसफे की दाल नहीं गलती और चुप होने के अतिरिक्त कुछ भी नहीं सूझता।

अवधूत ने कहा—यदि तुम दोनों सम्बन्ध करना चाहते हो तो मुझे कोई इन्कार नहीं है। क्या इस विषय में तुम लोगों ने आपस में बातचीत की है?

शुकदेव—नहीं महाराज! नहीं! मैं आप की दया का अनुचित लाभ नहीं उठाना चाहता।

विशाखा—भगवन्! मेरी इनके साथ कोई बातचीत नहीं हुई।

अवधूत—सब से पहिले यह मेरा धर्म है कि मैं तुम्हारी नीयत को जान जाऊँ फिर अपनी सम्मति दूँ। मैं तुम दोनों को आपस में बातचीत करने की आज्ञा देता हूं। भली भाँति सोच समझ लो जिसमें पीछे किसी को शिकायत न रहे।

पाँचवाँ अध्याय

शुकदेव और विशाखा

अवधूत की आज्ञा पाकर विशाखा और शुकदेव उसके पास से उठे और झोंपड़े से बाहर निकल कर वृक्ष के नीचे बैठ गये।

शुकदेव ने कहा—सुन्दरी! तूने मेरी जान बचाई और जीवन आरम्भ करने के लिये दो हजार की अशरफियाँ दीं। मैं किस मुँह से तेरी बड़ाई करूँ!

विशाखा बोली—मैं कब कहती हूं कि तुम कृतज्ञता प्रकट करो और मेरी स्तुति गाओ। संसार के कार बार का सिलसिला कर्म के नियम के अनुसार सदैव से ऐसा ही चला आरहा है।

कर्म वश मिलाप और विछोह होता रहा है। ऐसी बातों को आवश्यकता से अधिक मुख्यता देना बात का बतंगड़ा बनाना है। प्रकृति यह चाहती है कि मनुष्य अपना काम करे और अपनी जगह दूसरों के लिये खाली कर जाये। भ्रम और वासना में फँस कर वह मेरा तेरा पना करता है और अहंकार में जकड़ कर अपने लिये बन्धन की बेड़ी बना लेता है। तब उसे दुख होता है। इसी से जन्म मरन का सिलसिला चल खड़ा होता है। जन्म लेना दुख है। मरना दुख है। अबलता, निबलता, दुर्बलता और बुढ़ापा दुख ही दुख हैं। इच्छा के विरुद्ध किसी काम या घटना का होना दुख ही है। इन सारे दुखों की जड़ अहंकार में है जो अज्ञान है। तुम्हारा यह कहना कि मैंने तुम को कुछ दिया या तुम ने मुझ से कुछ लिया अज्ञान और भ्रम है। जो होता है होने दो। उधर ध्यान न दो और फिर दुख में कमी रहेगी।

शुकदेव—तू केवल नेक और धर्मात्मा ही नहीं है किन्तु ज्ञानी भी है। यह अवधूत जी महाराज के सत्संग का प्रभाव है।

विशाखा—हाँ! कुछ ऐसा ही है। मेरे शुभ कर्मों ने इनकी शरण में लाकर डाल दिया। इन्होंने मुझे पाला पोसा और पढ़ाया लिखाया। मैं इन बातों को कुछ कुछ समझने लगी हूँ।

शुकदेव—तू समझती है उन्होंने क्यों इस समय मुझे और तुझे झोंपड़े से बाहर निकाल दिया है?

विशाखा—क्या यह भी कोई बहुत बड़ा रहस्य है जो समझ में नहीं आता?

शुकदेव—हां! ऐसा ही है। यह गुत्थी हम दोनों मिलकर सुलझावेंगे।

विशाखा—तो सुलझाते क्यों नहीं? तुम्हें रोक किसने रक्खा है?

शुकदेव—तुमने मुझे जीवन प्रदान किया। इसलिये इस जीवन को तुम्हारे हाथ में देना चाहता हूँ।

विशाखा—न कोई किसी को जान दे सकता है न कोई किसी की जान ले सकता है। दोनों ही बातें असम्भव हैं। कर्म का नियम दिन रात अपना काम करता रहता है। काल के पहिये सदैव घूमते रहते हैं। जो कुछ हुआ इसी से हुआ। यह मैं तुमको एक बार समझा चुकी हूँ। बार-बार इसी बात को क्यों दुहराते हो? इससे तुम्हारा काम नहीं निकलेगा। खुले शब्दों में बातचीत करो तो मुझे उत्तर देने में सुगमता हो।

शुकदेव—बात यह है कि अब तक मेरा विवाह नहीं हुआ। मैं तुम्हारे साथ विवाह करना चाहता हूँ।

विशाखा—परन्तु हम दोनों में मतभेद है। मुझे सन्देह है कि तुम मुझ से प्रसन्न न रहोगे। मुझे अवधूत जी की शिक्षा ने गम्भीर और विशाल हृदय बना दिया है। मैं पक्षपात और हठ धर्मी से बचकर रहती हूं परन्तु तुम्हारे लिये यह बात नहीं कह सकती।

शुकदेव—चौकन्ना हुआ—हम दोनों में मतभेद नहीं हो सकता।

विशाखा—क्यों?

शुकदेव—जहाँ तक मैंने अवधूत जी को देखा है हमारे और उनके विचार मिलते जुलते हैं। वह शैव हैं और वेदान्ती हैं। मैं भी इसी मत का अनुयायी हूँ। तुम उनकी धर्म पुत्री हो। उन्होंने अपने मत के अनुसार तुम्हें भी धार्मिक शिक्षा दी होगी।

विशाखा—परन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया। वह इतने गहिरे आदमी हैं कि किसी को उनके सिद्धान्त का पता नहीं लगता। वह अवधूत वेदान्ती अवश्य हैं परन्तु कहने ही के लिये हैं।

वह मत मतान्तरों के बन्धन से मुक्त हैं और हर एक के साथ एक जैसा सलूक करते हैं। मुझको उन्होंने बुद्ध धर्म की शिक्षा दी है जिससे तुम को घृणा है।

शुकदेव—तुम ने कैसे जाना कि मैं बुद्ध धर्म से घृणा करता हूँ ?

विशाखा—मुझे तुम्हारी ही बातों से पता लगा। तुमने कहा था कि किसी बुद्ध धर्म वाले की सहायता से जीवन के बचने से मृत्यु कहीं बढ़ कर है। ब्राह्मण यह सलूक केवल बुद्ध धर्म्म वालों ही के साथ नहीं करते किन्तु जैन धर्म को भी वह इसी घृणित दृष्टि से देखते हैं। लोग रात दिन कहते फिरते हैं कि हाथी के पाँव तले दब कर मर जाओ परन्तु जैन मन्दिर में जाकर कभी शरण मत लो।

शुकदेव—यह सब सच है। ऐसा ही कहा सुना जाता है, परन्तु अवधूत जी ने ऐसा क्यों किया ?

विशाखा—सच्ची बात तो यह है कि उन्हें किसी धर्म के साथ विरोध नहीं है। वह इन सब झगड़ों से बहुत ऊँचे चढ़ गये हैं। जब उनको पता लग गया कि मेरे माँ बाप बुद्ध धर्म के अनुयायी हैं तो उन्होंने उसी धर्म की शिक्षा मुझे दी और उसी धार्मिक विश्वास को दृढ़ कराया। हम जब कभी मिलते हैं, भगवान के चरित्र की बातचीत हुआ करती है। उनका विचार है कि यदि कभी माँ बाप के घर जाना हुआ तो किसी अन्य मत वाले के साथ वह मेरा विवाह करना पसन्द न करेंगे। इसलिये उन्होंने बुद्ध धर्म के अनुसार मुझे शिक्षा दी है।

शुकदेव—परन्तु बौद्धों और शैवों में तो सम्बन्ध बराबर हुआ करते हैं। ऐसा तो बहुतायत के साथ देखने में आता है।

विशाखा—परन्तु इसका परिणाम अच्छा नहीं होता। ऐसे अनमेल वे जोड़ से घर में शान्ति नहीं रहती।

शुकदेव—हाँ! मेरा दिल चाहता है कि मैं तुम्हारे साथ रहूँ।

विशाखा—तो मुझे भी कोई इन्कार नहीं है क्योंकि मैं भिक्षुनी के व्रत धारण करने और जीवन पर्यन्त ब्रह्मचारिणी बनी रहने के लिये तैयार नहीं हूँ। तुम अवधूत जी के साथ जाकर मेरी इच्छा प्रकट कर दो। वह भी मान जावेंगे परन्तु इस काम में न मुझे जल्दी है और न तुम को जल्दी करनी चाहिए। घर जाओ। जैसा तुम्हारा विचार है, जमींदारी खरीदो काम काज में लगो और इस पर विचार करते रहो। यदि दो वर्ष तक यह प्रेम ऐसा ही बना रहे तो यहाँ आओ और मुझे अपने साथ ले चलो।

शुकदेव ने विशाखा की बात मान ली, अवधूत जी के पास गया और उनको विशाखा की इच्छा कह सुनाई।

सब ने मिलकर कन्द मूल खाया, दूध पिया और थोड़ी देर विश्राम किया। फिर शुकदेव अवधूत से विदा होकर नाव पर बैठा और रामगढ़ की राह ली। उस समय या तो लोग पैदल चलते थे या नाव का सहारा लेते थे।

द्वितीय भाग

पहिला अध्याय

रामगढ़

शुकदेव के बाप का नाम शिवदत्त था। उसकी माँ बचपन ही में मर गई थी। कहते हैं बच्चे की माँ और बूढ़े की स्त्री न मरे। बच्चा अनाथ हो जाता है और बूढ़े को दुख भोगना पड़ता है। हिन्दुस्तान में यह कहावत बहुत प्रसिद्ध है। शुकदेव की माँ के मरते ही शिवदत्त ने दूसरा विवाह किया। इस स्त्री का नाम चन्द्रमुखी था। जब तक इसके अपना बाल बच्चा नहीं था तब तक शुकदेव को वह प्यार करती रही। डेढ़ दो साल के अन्दर उसके पेट से रामदेव का जन्म हुआ। इसके उत्पन्न होते ही उसका चित्त शुकदेव की ओर से फिर गया। वह समझती थी कि यदि शुकदेव जीता रहा तो फिर रामदेव घर का मालिक न हो सकेगा। इसी नीच विचार ने उसे कुटिला बना दिया। रामदेव स्वभाव का अच्छा था। शुकदेव भी बुरा नहीं था परन्तु सौतेली माँ के अत्याचार से उसका स्वभाव बिगड़ता गया और वह हठीला, झगड़ालू और चिड़चिड़ा हो गया। घर के लोग उससे भयभीत होने लगे।

जब यह सयाना हुआ लक्ष्मणनगर के जमींदार शुद्धोदन ने शुकदेव के साथ अपनी लड़की लक्ष्मी के विवाह करने का सन्देश भेजा। लक्ष्मी पढ़ी लिखी और रूपवती थी। बाप धनवान था। हर तरह से वह घराना अच्छा था। भेद केवल इतना था कि शुद्धोदन बुद्ध धर्म का अनुयायी था और शिवदत्त

धार्मिक दृष्टि से शैव था। विवाह के लिये इन बातों पर ध्यान नहीं दिया जाता था। शिवदत्त चाहता था कि शुकदेव का विवाह लक्ष्मी के साथ कर दिया जाये परन्तु चन्द्रमुखी उसे अपने लड़के रामदेव के लिये पसन्द कर चुकी थी। शुकदेव बड़ा था और पहिले बड़े लड़के के विवाह होने की प्रथा है। वह कहती नहीं थी परन्तु मन में कुढ़ा करती थी। जब और कोई युक्ति समझ में नहीं आई तो शुकदेव को विष देकर अपनी समझ में मार डाला। शिवदत्त उसकी लाश ले जाकर गंगा में फेंक आया। यदि लाश जला दी गई होती तो शुकदेव का आज पता तक न लगता। गंगा का पानी उसके लिये अमृत का काम कर गया और विशाखा ने उसकी जान बचाई। लाश न जलाने का कारण यह था कि उस समय बिन ब्याहे लोगों की लाश या तो पृथ्वी में गाढ़ दी जाती थी या नदी में डुबा दी जाती थी। लाश उन्हीं की जलाई जाती थी जो विवाह होने के पीछे मर जाते थे।

शुकदेव विशाखा और अवधूत से बिदा होकर सीधा रामगढ़ नहीं आया। पटना बीच में पड़ता था। उस समय दो हजार रुपये की पूँजी बड़ी दौलत समझी जाती थी। वहाँ उसके मामा नाना रहते थे। वह उनसे मिला और उनकी सहायता से शहर के आस पास कई गाँव मोल लिये और अच्छा जमींदार बन गया। इस काम में उसे एक वर्ष से अधिक दिन लग गये। न वह रामगढ़ जा सका न विशाखा का हाल पूछ सका। आदमी चौकन्ना था। दुख के साथ मालिक की दया भी रहती है। सौतेली माँ की बदसलूकियों ने उसे सोच समझ वाला बना दिया था। उसने अपनी माता के अत्याचार का हाल मामा नाना से नहीं कहा परन्तु यह ऐसी बातें हैं जिन की समझ सब को होती है। इन दोनों ने शुकदेव की पूरी सहायता की और वह

थोड़े दिनों में अच्छा मालदार बन गया।

रामगढ़ पश्चिम की ओर था। अवधूत की कुटी पूर्व दिशा में थी और पटना इन दोनों के बीच में था। उस समय विहार के सूबा में आज कलकी तरह उससे बड़ा कोई शहर नहीं था। राजधानी होने के कारण यहाँ व्यापार का कारबार भी बड़ी धूम धाम से चलता था। काम काज के सिलसिले में दस बीस कोस के आदमी वहाँ बराबर आते जाते रहते थे। शुकदेव अपने काम में ऐसा लगा रहता था कि उसे रामगढ़ का ध्यान तक नहीं आया। उसके नानिहाल वालों को भी अवसर नहीं मिला कि वह शिवदत्त को उसके पटना आने की सूचना देते। चन्द्रमुखी समझ गई थी कि वह मर गया है। अब वह रात दिन रामदेव के विवाह की चिन्ता में रहती थी। शिवदत्त को शुकदेव के मरने का बहुत दुख था। संसार के व्यवहार के सिलसिले में वह धीरे २ इसे भूल गया और अब चन्द्रमुखी की तरह उसे भी यही धुन थी कि किसी तरह रामदेव का विवाह लक्ष्मी के साथ हो जाये।

जब पटना के कारबार से छुट्टी मिली शुकदेव अकेला ही रामगढ़ गया और इधर उधर चक्कर लगाकर फिर पटना में लौट आया। पटना रामगढ़ से दूर नहीं था। गाँव में उसका इस तरह आना जाना किसी विशेष कारण से था। दो चार आदमियों ने उसे वहाँ दिन के समय चलते फिरते देख भी लिया। बात चीत किसी से नहीं हुई। साल भर के पीछे उसका गाँव में यकबारगी आना और फिर लापता होजाना लोगों के भय और आश्चर्य का कारण हुआ।

शिवदत्त और चन्द्रमुखी दोनों एक दिन लक्ष्मणनगर के आदमियों से रामदेव के विवाह की बात चीत कर रहे थे। दोनों ओर से विवाह पका हो चुका था। वही दिन तिलक चढ़ने के

लिये नियत हुआ था। ठीक उसी समय दो चार गाँव वाले उनके घर पहुंचे।

उन्हों ने शिवदत्त और उसकी स्त्री से कहा—तुम तो रामदेव और लक्ष्मी का विवाह कर रहे हो परन्तु यह विवाह मङ्गलकारी न होगा।

शिवदत्त—क्यों ऐसी बातें कह रहे हो?

यह बोले—शुकदेव या तो जीता है या उसका भूत गाँव में चक्कर लगाया करता है। लोगों ने उसे खुली आँखों देखा है।

यह सब के सब डर गये। चन्द्रमुखी काँप उठी। शिवदत्त का कलेजा धड़कने लगा। गाँव के रहने वाले भूत के नाम से डरते हैं। उस दिन तिलक चढ़ने का रस्म जान बूझ कर रोक दिया गया।

शिवदत्त ने कहा—सम्भव है लोगों को भ्रम हो गया हो। साल भर से अधिक हुआ। यदि वह जीता होता तो अब तक घर आ जाता।

आदमी बोले—जीता हो या न हो, इस के विषय में कोई क्या कह सकता है, परन्तु उसे कई आदमियों ने देखा है। यदि देखने वाले एक आध आदमी होते तो इस घटना को भ्रम कहा जा सकता था। उसे तो बीसों आदमियों ने देखा है।

शिवदत्त—तुमने कब देखा?

आदमी—हम लोगों ने उसे कल भी देखा था और आज भी देखा है।

शिवदत्त—वह कहाँ है?

आदमी—इसका हमें पता नहीं है।

शिवदत्त—किसी ने उससे बातचीत भी की थी?

आदमी—बातचीत कैसे होती! वह किसी की ओर आँख उठाकर देखता तक नहीं था। आँधी की तरह आया और हवा के

झोंके की तरह चलता बना।

शिवदत्त—इसमें कोई न कोई भेद अवश्य है। सम्भव है उसकी सुरत का कोई दूसरा आदमी रहा हो!

आदमी—सम्भव तो सभी कुछ है परन्तु यदि यह और कोई होता तो किसी से बात चीत तो करता। उसने किसी से न कुछ पूछा, न सुना, आया और गया। कहाँ से आया और किधर गया इसका किसी को पता नहीं है।

शिवदत्त सोचने लगा।

एक आदमी ने कहा—शुकदेव की वर्षी होगई। साल भर तक वह छुपा हुआ था। अब तुम लक्ष्मी का विवाह रामदेव के साथ करना चाहते हो। इसीलिये अब वह गाँव का चक्कर लगा रहा है। मरते समय मनुष्य का जैसा विचार होता है शरीर छोड़ने पर वही घना हो जाता है और फिर वह उसी की उधेड़ बुन में पड़ा रहता है।

शिवदत्त—फिर क्या करना चाहिये?

आदमी—यह विवाह रोक देना ही उचित है।

चन्द्रमुखी—यह नहीं हो सकता।

आदमी—तुम को अधिकार है परन्तु यह याद रखना यदि विवाह करते हो तो फिर न रामदेव की कुशल है और न लक्ष्मी की। कौन जाने कितनी आपत्तियाँ तुम्हारे घर पर आ जायें!

लक्ष्मी डर कर काँप उठी—पता लेना चाहिये कि क्या बात है। मरा हुआ आदमी तो जी नहीं सकता। यदि यह शुकदेव का भूत है तो उसके दूर करने के लिये बहुत सी युक्तियाँ की जा सकती हैं।

शिवदत्त—भूत प्रेत की बात तो ढकोसला ही ढकोसला है। यदि लोगों ने सचमुच देखा है तो वह अवश्य जीता है। वह

किसी विचार से घर में नहीं आता। उसका पता लगाना चाहिये। सम्भव है उसके शरीर में प्राण रहा हो और मुर्दा समझकर उसे लोग दरिया में डाल आये हों और वह फिर जी उठा हो। यदि वह जीता जागता है तो मुझे सब से बढ़ कर हर्ष होगा।

शिवदत्त ने यह बातें कहते समय कई बार चन्द्रमुखी की ओर देखा। वह समझता था कि सौतेली माँ होने के कारण उसने गंगा में लाश जल्द बहा दी होगी। वह इतना भोला भाला नहीं था। वह शुकदेव के साथ चन्द्रमुखी के दुर्व्यवहार का हाल अच्छी तरह जानता था। जब मनुष्य कामांग से पीड़ित होकर लड़के के होते हुये भी दूसरा विवाह कर लेता है तो वह एक दम कुचल जाता है। जान बूझ कर दबा रहता है। स्त्री की प्रसन्नता में अपनी प्रसन्नता समझता है और वह दन-दनाती हुई इस पर दिन रात सवार रहती है। या तो आदमी ऐसा विवाह न करे और यदि करना ही चाहता है तो उसे पहिली स्त्री के लड़कों का उचित ध्यान और प्रबन्ध रखना चाहिये। एक जगह और एक घर में रहने से अनेक प्रकार के भय लगे रहते हैं और बहुधा वह नर्क कुण्ड बन जाता है।

चन्द्रमुखी चुप रही। उसे मुँह खोलने का साहस नहीं हुआ। विवाह रोक देना पड़ा। शिवदत्त लड़के का पता लगाने के लिये आप गाँव के लोगों से मिला। जिन्होंने शुकदेव को देखा था उसके जीते रहने का विश्वास दिलाया।

शिवदत्त ने आस पास के गाँव में भी पता लगाने के लिये आदमी भेजे। यह सब के सब निराश होकर लौट आये। पता नहीं चला कि वह कहाँ रहता है। उसने अपने दूर दूर के सम्बन्धियों और इष्ट मित्रों को भी लिखा पढ़ा परन्तु कुछ भी लाभ न हुआ। तब वह हार मानकर चुपका हो रहा।

दूसरा अध्याय

शिवदत्त और चन्द्रमुखी

मरने के साल भर के पीछे शुकदेव का इस तरह गाँव में दिखलाई देना साधारण बात नहीं थी। इस घटना ने सनसनी फैला दी। सभी अपना बेतुका सुर अलापते थे। जितने मुँह उतनी बातें। सौतेली माँ का सलूक कौन नहीं जानता! सौतेली माँ लाख अच्छी हो परन्तु जब कहीं जायेगी सौतेली ही कही जायेगी। सारा गाँव जानता था कि चन्द्रमुखी शुकदेव को नहीं चाहती थी। हाँ! विष देने की बात कोई नहीं जानता था। उसका एकबारगी बीमार होकर मर जाना और झटपट गंगा में पहुंचाया जाना आश्चर्य्य की बात थी। लोग तरह तरह की बातें कहते सुनते रहे। यह किसी की समझ में भी नहीं आ सकता था कि शुकदेव को विष दिया गया होगा। लोगों का विचार था कि अकाल मृत्यु होने के कारण उसके आत्मा को शान्ति नहीं मिली है।

शिवदत्त के सामने किसी को सन्देह उत्पन्न करने का साहस नहीं होता था क्योंकि गाँव में वह सब से मालदार और बड़ा आदमी था। सरकार दरबार में भी उसका बड़ा मान था। फिर भी कहने वाले कैसे रुक सकते थे! उसने किसी न किसी तरह बहुत सी बातें सुन लीं। एक दिन चन्द्रमुखी से कहने लगा—गाँव वाले कहते हैं शुकदेव अकाल मृत्यु से मरा है और उसे उस समय तक चैन न आयेगा जब तक अपना बदला न ले लेगा। पता नहीं ऐसा कहने से उनका मतलब क्या है?

चन्द्रमुखी मन में तो डर गई परन्तु सँभल कर बोली—यह लोग यों ही बका करते हैं।

शिवदत्त—मैं भी ऐसा ही समझता हूँ। मेरी समझ में वह मरा नहीं है किन्तु अब तक जीता जागता है।

चन्द्रमुखी—फिर वह घर में क्यों नहीं आता? उसे किस ने रोक रक्खा है?

शिवदत्त—इसका उत्तर तू ही दे सकती है। मैं कुछ नहीं कह सकता।

चन्द्रमुखी की आँखों से टप टप आँसू गिरे—यदि मैं उसकी सौतेली माँ न होती तो तुम ऐसा क्यों कहते!

शिवदत्त—तेरा सलूक लड़के के साथ अच्छा नहीं था।

चन्द्रमुखी—तुम्हारा तो अच्छा था। दुर्व्यवहार से किसी की मृत्यु तो नहीं होती। मरना जीना ब्रह्मा के हाथ की बात है। जिसको जब तक जीना है वह जियेगा। जब मृत्यु आती है फिर किसी के रोकने से नहीं रुकती। इसमें मनुष्य का कोई वश नहीं चलता। योगी, यती, ऋषि मुनि सब ही समय पर मर जाते हैं। अवतार तक को इससे बचाव नहीं है। दूसरे का तो कहना ही क्या है?

शिवदत्त—तब तू उसे मुर्दा समझ रही है?

चन्द्रमुखी—इसके अतिरिक्त और क्या समझूँ!

शिवदत्त—लोगों ने उसे देखा है। क्या इस पर भी तुझे विश्वास नहीं आता?

चन्द्रमुखी—नहीं, सम्भव है उसकी सूरत का कोई और आदमी रहा हो या.....।

शिवदत्त—या उसका भूत रहा हो?

चन्द्रमुखी—हाँ।

शिवदत्त—तो फिर क्या करना चाहिये?

चन्द्रमुखी—ईश्वर का नाम लीजिये। रामदेव का विवाह

लक्ष्मी से कर दीजिये। भूत पिशाच का प्रबन्ध सयाने आदमी कर सकते हैं।

शिवदत्त—यदि शुकदेव जीता है और आ गया तो फिर उसका आना सारे घर को आपत्ति में डाल देगा। वह स्वभाव का चिड़चिड़ा भी है। बड़ा लड़का है। जल्दी करने का नतीजा अच्छा नहीं होगा।

चन्द्रमुखी—वह आयेगा कैसे! कहीं मुर्दा भी जिया करता है! तुम इस भ्रम को अपने मन से दूर करो और काम धन्धे में लगो। रामदेव का विवाह न रोको। इससे कोई लाभ नहीं है।

शिवदत्त ने सोचा - स्त्री ठीक कहती है। शुकदेव यदि जीता भी है तो उसे छुपे रहने की क्या आवश्यकता है! वह घर में क्यों नहीं आता। भागा भागा क्यों फिरता है। उसने स्त्री से पूछा—जो लोग लक्ष्मण नगर से तिलक का रस्म लेकर आये थे वह तो चले गये। अब क्या करना चाहिये?

चन्द्रमुखी बोली—उन्हें तसल्ली देकर फिर बुला भेजो और जहाँ तक जल्द हो सके इसी साल रामदेव का विवाह कर दो। लड़का सयाना हो गया है। बहुत दिनों तक उसका विवाह रोके रखना अच्छा नहीं है।

स्त्री, पुरुष पर अधिकार रखती है। पुरुष कहने के लिये घर का मालिक मान लिया जाये परन्तु उसे स्त्री से दबना पड़ता है। वह पुरुष का बाँया अंग कहलाती है। पुरुष सबल समझा जाता है परन्तु वास्तव में अनुभव इसके विरुद्ध है। जिन्होंने स्त्री को शक्ति का नाम दिया था वह बड़े ही बुद्धिमान लोग रहे होंगे इसीलिये स्त्री का नाम पुरुष के नाम से पहिले आया करता था। अब तक भी राम सीता या कृष्ण राधा कोई नहीं कहता। सब सीताराम, राधाकृष्ण, गौरीशंकर, उमाशंकर और लक्ष्मीशंकर कहते हैं।

शिवदत्त अपनी फिलोस्फी भूल गया। उसे चन्द्रमुखी की बात माननी पड़ी। दूसरे दिन नाई और पुरोहित लक्ष्मण नगर भेजे गये और पत्र लिखा गया कि जहाँ तक जल्द हो सके विवाह का प्रबन्ध किया जाये।

यहां इतना और बता देने की आवश्यकता है कि हिन्दुओं में ईश्वर जाने कब से लड़कियों के बचपन में विवाह करने का रिवाज है। बुद्ध धर्म ने अपने अनुयायिओं को इससे रोक रक्खा था। इसलिये लक्ष्मी की अवस्था अधिक हो गई थी। उसके माँ बाप बुद्ध धर्म के मानने वाले थे। बौद्धों में अब तक कोई अच्छा वर कन्या के लिये नहीं मिलता था। इसलिये वह शिवदत्त के लड़के ही को अच्छा समझते थे और उनको भी विवाह करने की जल्दी थी।

तीसरा अध्याय

लक्ष्मण नगर में शुकदेव

नाई और पिरोहित लक्ष्मण नगर पहुँचे। शिवदत्त का सन्देश सुनाया। लक्ष्मी के बाप ने इन लोगोंको आदर सत्कार के साथ ठहराया।

शुद्धोदन ने अपनी स्त्री चन्द्रप्रभा के साथ रात में बातचीत की। स्त्री पुरुष दोनों ही चाहते थे कि लक्ष्मी का विवाह जल्द हो और वह अपने पति के घर जाकर रहे। हिन्दुओं के यहाँ लड़कियाँ घर पर बोझ समझी जाती हैं। बौद्धों ने इस विचार को दूर करा दिया था। उन्होंने स्त्री पुरुष और लड़की लड़कों को बराबरी का दरजा दे रक्खा था परन्तु इस भाव ने देश में जड़ नहीं पकड़ी। प्राचीन समय से आज तक सब लकीर के

फकीर चले आ रहे हैं। जो बुरा रस्म एक बार जारी हो गया फिर उसका दूर करना कठिन ही नहीं किन्तु असम्भव हो गया। अब तक उसी का सिलसिला चला आता है। सुधार करने वाले बुरे, नीच और गिरे हुए समझे जाते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि बुद्ध धर्म ने हिन्दुओं के सुधारने का बहुत कुछ यत्न किया और उसकी काया पलट दी परन्तु इस सुधार ने पुराने धर्म के अनुयाइयों की मर्यादा को और भी बढ़ा दिया और यह सुधारक उनकी दृष्टि में और भी पतित हो गये। यही बात अब दिखलाई देती है। अभी थोड़े दिन की बात है कि आर्य समाज ने सुधार का काम अपने हाथ में लिया। उसने सनातनियों को अपने से कहीं बढ़कर बना दिया परन्तु वह उसकी ओर नहीं झुके। जैसे बौद्ध और अबौद्ध दोनों ही हिन्दू और एक जाति के थे वैसे ही सनातनी और आर्य्य समाजी भी एक ही थैले के दो चट्टे बट्टे हैं। केवल विचारों में थोड़ा सा भेद है। जो बात उस समय उनमें थी, वही अब भी है। हाँ! सनातनियों ने बुद्ध धर्म वालों को एक दम देश से निकाल दिया, उन पर घोर अत्याचार किया, उन्हें तेल के खौलते हुए कड़ाहों में डालकर भस्म कर डाला। आज कल आर्य समाज की यह दशा चाहे न हो परन्तु इससे किस को इन्कार हो सकता है कि वह धीरे धीरे सनातनियों में मिलते चले जा रहे हैं। यह दशा देखकर पता लगता है कि थोड़े दिनों में इनका होना न होना बराबर हो जायेगा।

शुद्धोदन जाति पाँत के बन्धन को कल्पित समझता हुआ भी ब्राह्मण कहलाने का अभिमानी था। इस दृष्टि से पहिला दूसरे को उच्च घराने का समझ रहा था। हिन्दू सदैव से अपनी लड़की ऊँचे कुल में देते आये हैं। यह बहुत ही पुराना रिवाज है। इसलिये शुद्धोदन और चन्द्रप्रभा दोनों लक्ष्मी को

शिवदत्त के घर व्याहने में अपनी बढ़ाई समझते थे।

शुद्धोदन ने कहा—शिवदत्त के आदमी आये हैं और लक्ष्मी का विवाह जल्द कर देने का सन्देश लाये हैं।

चन्द्रप्रभा बोली—विवाह किससे होगा? शुकदेव से या रामदेव से? जब हमारे आदमी लौट आये थे वह कहते थे कि शुकदेव मरा नहीं है किन्तु जीता है और इसीलिये तिलक चढ़ने की रस्म भी रोक दी गई थी। अब यह क्या कहते हैं।

शुद्धोदन—उनको पूरा पूरा विश्वास है कि शुकदेव मर गया है, वह इस संसार में नहीं रहा। लोगों ने उसी रंग रूप का कोई और आदमी देखकर भूल से उसी को शुकदेव समझ लिया। पता लगाने और जाँच करने पर निश्चय हो गया कि शुकदेव वास्तव में मर गया है।

चन्द्रप्रभा—यदि यह बात है तो तुमको विवाह करने में क्या हर्ज है? विवाह करना आवश्यक है। अच्छा घर और अच्छा वर सदैव नहीं मिलता। रामदेव अच्छा लड़का है। उसका बाप कुलीन ब्राह्मण होने के अतिरिक्त धनवान और इलाकेदार है। कुल गोत्र और शाखा की दृष्टि से भी श्रेष्ठ है। जैसा वह कहते हैं वैसा कर दो। अब देर करना उचित नहीं जान पड़ता। लड़की को कब तक बिठा रक्खोगे? उसे तो एक न एक दिन पराये घर जाना ही है।

स्त्री पुरुष दोनों ने इस बात को पसन्द कर लिया।

दूसरे दिन जब शुद्धोदन अपनी बिरादरी को साथ लिये हुए रामगढ़ वालों से विवाह की बातचीत कर रहा था, ठीक उसी समय शुकदेव वहाँ आकर खड़ा हो गया। दोनों जगह के लोग उसे देखकर डर गये और चुपचाप हो रहे।

शुकदेव आप ही बोल उठा—आप लोग क्या बातें कर रहे हैं?

शुद्धोदन ने उत्तर दिया—मेरी लड़की के विवाह की बात चीत हो रही हैं।

शुकदेव-- किस के साथ?

शुद्धोदन—रामदेव के साथ।

शुद्धोदन—क्या यह विवाह पहिले शुकदेव के साथ नियत नहीं हुआ था?

शुद्धोदन—हाँ, हुआ था।

शुकदेव-- फिर नीयत क्यों पलट गई?

शुद्धोदन को उतर देने में हिचकिचाहट हुई। फिर उस ने सँभल कर कहा--"शुकदेव के सम्बन्ध में बहुत सी बातें सुनी जाती हैं।"

शुकदेव--वह क्या हैं?

शुद्धोदन—सालभर से अधिक उसको गये हुये होने पर यह पता मिला कि वह मर गया। हम लोगों को चुप हो जाना पड़ा। अब वर्ष दिन के पीछे फिर बात चीत छेड़ी गई है।

शुकदेव— और दूसरी खबर क्या है?

शुद्धोदन—वह यह है कि शुकदेव मर कर भूत हो गया है। यह बात थोड़े ही दिनों से उड़ी है।

शुकदेव—शुकदेव मर गया और शुकदेव भूत हो गया। तुम ने यह सुना और उस पर विश्वास हो गया। इतने आदमियों में कोई मुझे पहिचानता है या सब के सब अनजान हैं?

रामगढ़ के नाई पुरोहितों ने कहा—शुकदेव की सूरत तुम्हारी जैसी थी। शुद्धोदन ने भी उस की पुष्टि की क्योंकि वह उसे पहिले देख चुका था।

शुकदेव—तुम्हारी समझ में शुकदेव मेरे जैसा था। इससे पाया जाता है कि शुकदेव की सूरत मुझसे मिलती जुलती है।

फिर गहिरी दृष्टि से देखो, मैं शुकदेव हूं या नहीं ?

नाई और पुरोहित को मानना पड़ा—तुम एकदम शुकदेव के जैसे हो।

शुकदेव—तुम्हारे शब्द स्पष्ट नहीं हैं। यदि तुमको पूरा विश्वास है तो यह क्यों नहीं कहते कि मैं ही शुकदेव हूँ।

नाई और पुरोहित—तुम शुकदेव हो इसमें कोई सन्देह नहीं रहा।

शुकदेव – यदि मैं ही शुकदेव हूँ और तुम को भी पूरा विश्वास हो गया है तो क्या अब भी तुम लक्ष्मी का विवाह रामदेव के साथ करोगे ?

नाई और ब्राह्मण चुप रहे। वह कुछ भी नहीं बोल सके।

शुद्धोदन ने कहा—ऐसी दशा में कोई बात बिना सोचे समझे न की जायेगी। जब शुकदेव के साथ विवाह ठीक हो चुका है तो सबसे पहिले उसी का हक है। रामदेव का सम्बन्ध शुकदेव के मरने के पीछे सोचा गया था। यदि तुम शुकदेव हो तो घर से भागे क्यों फिरते हो ?

शुकदेव—इसका कारण है। बिना कारण के कोई कार्य नहीं होता। तुम्हें उस कारण के जानने की आवश्यकता नहीं है। इस समय प्रश्न केवल यह है कि तुम अपनी लड़की का विवाह मेरे साथ करोगे या नहीं ?

शुद्धोदन—अच्छा तो यह होता कि यह प्रश्न तुम्हारे बाप की ओर से किया जाता, तब मैं इसका उत्तर देता। तुम से क्या कहूँ। बाप के रहते हुए लड़कों से ऐसी बातें नहीं की जातीं। इसे लोग बुरा समझते हैं।

शुकदेव—ठीक है ! जब तक बाप की ओर से यह प्रश्न न उठाया जायेगा या वह सन्देश न भेजेगा, तब तक तुम न तो मुझे उसका उत्तर दोगे और न विवाह के लिये ही 'हाँ' या

'नहीं' करोगे ?

शुद्धोदन—तुम ने कुछ और ही नतीजा निकाल लिया।

शुकदेव—अच्छा ! आप ठीक नतीजा निकालकर बतलाइये।

शुद्धोदन—क्या इसके उत्तर के लिये तुम कुछ दिनों और धैर्य नहीं रख सकते।

शुकदेव--क्यों नहीं ! अब तक मैं बराबर धैर्य से काम लेता रहा। इसकी भी हद होती है। तुम तो झट पट विवाह पक्का करना चाहते हो। यह नाई ठाकुर और ब्राह्मण देवता इसी लिये आये हैं और मुझे शान्त रहने का उपदेश सुनाते हो।

शुद्धोदन को आश्चर्य हुआ कि एक नवयुवक अपने विवाह के लिये इस तरह निर्लज्जता से बातचीत कर रहा है। न ऐसी प्रथा पहिले थी और न अब है। उसके मन में बहुत से सन्देह उत्पन्न होने लगे। उसने अपने आप को सँभाल कर कहा—इनका आना और बात थी और तुम्हारा अचानक से प्रकट हो जाना दूसरी बात है। इसलिये धैर्य से काम लेने के लिये कहा जा रहा है।

शुकदेव— इन दोनों बातों में क्या भेद है ?

शुद्धोदन—इन्हें लोग नित्य देखते, इनसे मिलते जुलते और आपस में बातचीत करते रहे हैं। साल भर तक तुम लापता रहे। अब अचानक प्रकट हो गये। इससे उत्तर देने में सोचना पड़ता है।

शुकदेव—तब तुम भी मुझे मुर्दा मान रहे हो और भूत समझते हो ?

शुद्धोदन कुछ उत्तर न दे सका।

शुकदेव ने कड़क कर कहा—याद रक्खो। मैं शुकदेव हूँ। यदि लक्ष्मी का विवाह तुमने और किसी से किया तो जन्म भर रोओगे और मैं जीवन पर्यन्त तुम सब को चैन न

लेने दूँगा।

शुकदेव की आँखें क्रोध से लाल अंगारा बन गई थीं, सब उसे देखकर चुप हो रहे। किसी को भी उससे बात करने का साहस नहीं हुआ। इन सब को आश्चर्य में छोड़ कर उसने पीठ फेरी और वहाँ से नौ दो ग्यारह हो गया। यह बातें उसने खड़े खड़े की थीं, सब के सब इस तरह उसके रौब में आ गये थे कि एक शब्द भी न बोल सके। वह आया और चला गया। यह सब हक्का बक्का हो गये। जब शुद्धोदन का चित्त सावधान हुआ उसने अपने साथियों से कहा—शुकदेव को बुला लाओ उसे सन्तोष दिया जाये। उसे अप्रसन्न करने से कोई लाभ नहीं है।

यह गये। जिधर वह गया था दूर तक उसका पता लेते हुए गये। किसी ने कहा—देखा था। किसी ने कहा—नहीं देखा था। गाँव के बाहर पता लगाना कठिन हो गया। यह उल्टे पाँव लौट आये। शुद्धोदन को सूचना दी गई—गाँव के बाहर निकलते ही पता नहीं शुकदेव किधर चला गया।

यह समाचार सुनते ही सब सन्न हो गये। उसका आना और चला जाना आश्चर्य की बात थी। शुद्धोदन ने नाई और पुरोहित से कहा—"मैं नहीं समझता ऐसी अवस्था में क्या कहूं और क्या न कहूं? यदि तुम्हारी देखी हुई बात न होती तो इसकी सचाई का विश्वास तुम्हें न आता। तुम ने आप देख लिया कि शुकदेव आया था। उसने क्या क्या बातें कही। अब जब तक पता न लगे कि वह कहाँ रहता है या नहीं रहता है तब तक मैं इस विवाह के विषय में हाँ या नहीं कुछ नहीं कह सकता।"

चौथा अध्याय

शुकदेव की याद

साल दो साल की संसार में क्या गणना है? कुछ भी नहीं। इसकी तो वह भी हैसियत नहीं है जो बुन्द की समुद्र के साथ या रेत के परमाणु की पहाड़ के साथ होती है। क्षण, पल, घंटे, पहर, दिन रात, मास और वर्ष व्यतीत होते हुए मनुष्य को कुछ का कुछ बना जाते हैं। विशाखा का विचार था कि शुकदेव आयेगा और उसे साथ ले जायेगा। परन्तु वह नहीं आया। दिल ही तो है जिधर लग गया, लग गया। वह पटना में आया, जमीदारी खरीदी और बड़ा आदमी हो गया! साथ ही संस्कृत भाषा का अच्छा विद्वान् भी था। नाना और मामा उसे अनाथ समझकर उसके सहायक बन गये थे। जब उन्होंने शुकदेव को विष खिलाने का हाल सुना, शिवदत्त के साथ उनकी रही सही सहानुभूति भी जाती रही। शिवदत्त ने शुकदेव की खोज में अपने आदमी उनके पास भेजे। उन्होंने विशेष ध्यान नहीं दिया। यह शिवदत्त के पास लौट गये। शुकदेव शहर के दूसरे मुहल्ले में रहता था। वह उसे देख भी नहीं सके। इतने बड़े शहर में शुकदेव जैसे आदमी को खोज निकालना सहज काम नहीं था। फिर इन गँवारों से इसकी कब आशा हो सकती थी! शिवदत्त को पता न लगने पर विश्वास हो गया कि शुकदेव संसार में नहीं रहा परन्तु लक्ष्मण नगर से लौट आने पर जब उसने नाई और पुरोहित से शुकदेव के क्रोध का हाल सुना वह सन्नाटे में आ गया। अब न वह उसे मुर्दा समझता था और न जीता जागता होने का विश्वास होता था। एक बार उसके मुँह से निकल गया—भूत जान नहीं

मारता परन्तु बड़ी दुर्गति करता है। चन्द्रमुखी के दिल में यह बात घर कर गई और वह रात दिन उठते बैठते अपने और अपने बेटे के कुशल के लिये देव पितृ मनाया करती थी। इस प्रकार उसे कर्म का बदला मिलता रहा। उधर चन्द्रप्रभा (शुद्धोदन की स्त्री) की लड़की के लिये वर मिलना कठिन हो गया। वह भी महा दुखी रहने लगी। न चन्द्रमुखी को सुख था न चन्द्रप्रभा को शान्ति थी। दोनों अपने अपने कर्म भोगने लगीं। कोई मनुष्य भूलकर भी न सोचे कि कर्म करके उसके फल भोगने से बच जायगा। सृष्टि का नियम अटल है। कर्म का फल भोगने से कोई भी नहीं बच सकता। ऋषि, मुनि, देवी देवता और अवतार तक को इसके चक्कर में आ जाना पड़ता है। और सब चाहे चुप हो रहें, यह कभी चुप नहीं बैठता और ऐसे नाच नचाया करता है कि नाचने वालों के छक्के छूट जाते हैं और वह नाचने से तंग आ जाते हैं।

विशाखा सयानी हो चुकी थी। अवधूत अपनी मस्ती के जीवन में मस्त रहता था। उसे अपने अतिरिक्त और किसी की भी सुध नहीं रहती थी। उसने केवल दया भाव से विशाखा का पालन पोषण किया था। अब तक वह उसे पढ़ाया भी करता था परन्तु जहाँ वह आँखों से ओझल हुई यह अपने निज रूप में मस्त हो जाता था, जहाँ शुकदेव और विशाखा का नाम तक न था।

एक दिन विशाखा ने कहा— भगवन्! शुकदेव नहीं आया?

अवधूत ने उत्तर दिया—नहीं आया न सही! किसी को पता है कि वह किस धुन में होगा! मनुष्य स्वप्न का पुतला है। जब तक स्वप्न है तब तक वह स्वप्न में है। स्वप्न के पीछे जागृत अवस्था आती है। फिर उसकी दशा बदल जाती है।

विशाखा—आपका कहना सच है। मनुष्य का जीवन ऐसा

ही है। मैं भी इस समय स्वप्न में हूँ। शुकदेव का स्वप्न देखा, वह आया और चला गया। अब तक उसके स्वप्न का प्रभाव मेरे हृदय पर अंकित है। स्वप्न ही में मैं आपके साथ बातचीत कर रही हूँ। जब जागृत अवस्था आवेगी न मैं रहूँगी, न वह, और न आप रहेंगे! यह मैं समझ रही हूँ। मुझ पर स्वप्न नें अपना प्रभाव डाल रक्खा है। प्रश्न यह है कि अब मैं क्या करूँ?

अवधूत—लड़की! तेरा जीवन जिस संस्कार को लेकर आरम्भ हुआ है उसका चक्र तो चले हुए बिना रहेगा नहीं। यह प्रकृति का नियम है और नियम भी अटल है। इसलिये मैं निश्चय रूप से कुछ नहीं कह सकता। संस्कार तो तुझ में पड़ गये हैं। वह निरर्थक जानें वाले नहीं हैं परन्तु पहिले कर्मों के संस्कार को तो मिटाना है। जब तक यह दूर न होंगे तब तक मेरी शिक्षा जड़ न पकड़ेगी और न उसका उभार होगा। संस्कार का भोग तो समय पर भोगना ही पड़ता है।

विशाखा—अब मैं क्या करूँ?

अवधूत—जो तेरे जी में आये, कर। मैं रोकता नहीं।

विशाखा—यह उत्तर सन्तोष जनक नहीं है। मैं मांस हाड़ का लोथड़ा थी। आपने अपनी गोद में पाला उस समय आपने यह उपदेश नहीं दिया था।

अवधूत हँसा—उस समय तू इस समय के उपदेश के योग्य न थी। मैं तुझे खिलाता पिलाता पढ़ाता लिखाता रहा। वह भी उपदेश ही था। तूने खाया, तूने पिया, तूने पढ़ा, तूने लिखा। यह सब काम तूने आप किया। मैंने नहीं किया। मैं तो केवल सहारे के रूप में संकेत मात्र था।

विशाखा—तो अब तक मैं भी उस सहारे के संकेत के आधीन हूं। उस समय मुझे समझ बूझ न थी। अब कुछ समझ बूझ आ गई है। उस समय मैं अपने भाव को प्रकट नहीं कर

सकती थी। अब उन्हें प्रकट कर सकती हूँ। उस समय और इस समय की अवस्था में यह भेद है। नहीं तो जैसी मैं पहिले थी वैसी ही अब भी हू।

अवधूत ने गहिरी दृष्टि से विशाखा को देखा—देवी! तेरी समझ बूझ बड़ी अच्छी है। इन गूढ़ बातों को बहुत कम लोग समझते हैं।

विशाखा—यह सब आप की दया का फल है।

अवधूत--मैं कौन हूँ और तू कौन है?

विशाखा--आप मेरे ऊँचे, सर्व व्यापक और प्रकाशमय आत्मा हैं। मैं अपना निचला, अल्पज्ञ और अन्धकारमय आत्मा हूं। मुझ में और आप में वही भेद है जो सवाल करने वाले दिल का जवाब देने वाले दिल से होता है। एक ही मनुष्य है। वह एक ही समय में अपने आप से प्रश्न करता है और आप उत्तर भी देता है मानो आवश्यकतानुसार वह अपने आपको दो हिस्सों में करके प्रश्न और उत्तर करने लगता है। इस प्रश्नोत्तर के समय दो मनुष्य नहीं होते। इस समय सृष्टि नियम के अनुसार प्रत्यक्ष रूप में दो व्यक्ति बन गये हैं—एक आप हैं और दूसरी में हूं। इसके अतिरिक्त मुझ में और आप में कोई भेद नहीं है।

अवधूत—वाह विशाखा! तेरी समझ क्या अच्छी है! क्या सचमुच तू ऐसा ही समझती है?

विशाखा—समझ कई तरह की होती है—एक तो सुनी सुनाई बातों को याद कर लेना और तोते की तरह उन्हें दुहराते रहना दूसरे इस सुनी सुनाई बात के किसी हिस्से को समझना और किसी को न समझना, तीसरे असलियत को अनुभव कर के उस पर आरूढ़ हो जाना, चौथे उस अनुभव का रूप बन जाना। यह चार तरह की समझ है। मुझमें तीसरे प्रकार की

समझ आ गई है। चौथी समझ की कसर है। आप में चौथी समझ सर्वाङ्ग से पूर्ण है। इसीलिये मैं आपको अपना प्रकाशमय आत्मा मानती हूँ।

अवधूत—सच है। यह चार तरह की समझें हैं। क्या इन की व्याख्या तू और भी कर सकती है?

विशाखा—क्यों नहीं! एक समझ कथनी है। दूसरी समझ करनी है। तीसरी समझ कथनी करनी और रहनी की सम्मिलित अवस्था है और चौथी समझ रहनी है। जिस समझ की झलक मनुष्य के जीवन में दिखलाई दे वही रहनी है और जहाँ रहनी न हो वही कथनी है।

अवधूत—मैं समझ गया कि तू इस बात को भली भाँति जान गई है परन्तु यह बातें जो तू कहती है वेदान्त से सम्बन्ध रखती हैं। मैं तुझ से पूछना चाहता हूँ कि यह वस्तुयें जो सृष्टि में अलग अलग दिखलाई देती हैं, कैसे बन जाती हैं?

विशाखा—भगवन्! सत तो सदैव सत् ही है। उसकी असली हैसियत सदैव ज्यों की त्यों रहती है। उस सर्व व्यापक में आप ही आप लहर उठा करती है अर्थात् क्षोभ होता रहता है। इस लहर या मौज से उस महासागर में अनेक प्रकार के भँवर बन जाते हैं। यही भँवर या गिरहें चाँद, सूर्य, तारा मण्डल, देवी देवता, मनुष्य और पशु इत्यादि का नाम पाती हैं। तत्व की दृष्टि से तो यह सब एक हैं परन्तु विशेषता और मुख्यता की दृष्टि से यह सब अलग अलग दिखलाई देते हैं। इसी प्रकार यह सृष्टि बनती और बिगड़ती रहती है। असलियत तो जैसी है वैसी ही रहती है। उसमें कोई तबदीली नहीं आती। केवल बिचली अवस्था में भेद भाव प्रतीत होता है।

अवधूत—सच है। उदाहरण तो तूने दे दिया परन्तु क्या इससे भी स्पष्ट शब्दों में समझा सकती है?

विशाखा—समुद्र तो समुद्र है। समुद्र का समुद्रपना भूत, भविष्य और वर्तमान काल में बराबर और एक रस रहता है परन्तु स्वाभाविक हिलोर होने के कारण समुद्र में लहर बुदबुदे, धार, झाग, भँवर और भाप इत्यादि बनते बिगड़ते मरते और खपते रहते हैं। उसी से निकले और उसी में समा गये। इनके रूप और गुण भिन्न भिन्न हैं परन्तु समुद्र को उसकी छूत तक नहीं लगती। वह जैसा पहिले था अब भी वैसा ही है और आगे भी वैसा ही रहेगा। यह एक साधारण उदाहरण है।

अवधूत प्रसन्न हो गया—तुझ में ज्ञान का बहुत बड़ा अधिकार है। अब तू शुकदेव के विषय में मुझ से क्या पूछना चाहती है? जो तेरी इच्छा हो उसे कह दे। मुझ से जहाँ तक हो सकेगा तेरी सहायता करूँगा।

विशाखा—शुकदेव आया। अपना संस्कार दे गया। मैं तभी से उसकी धुन में लगी रही। अब यह चाहती हूं कि अपनी धुन में पक्की उतरूँ।

अवधूत—बहुत अच्छा! मुझे उस गाँव का पता है। मैं तुझे साथ लेकर चलता हूँ। बीच में पटना पड़ेगा। वह बहुत बड़ा शहर है। तूने अब तक आदमियों की बड़ी बस्ती नहीं देखी और जब से तू इस कुटी में आई है मैं भी वहाँ नहीं गया। तू उस शहर को भी देख लेगी। घूमने फिरने से आदमी का अनुभव बढ़ता जाता है। तीर्थयात्रा को इसी लिये ऋषियों ने आवश्यक बतलाया था।

विशाखा—तो पटना होकर आप शुकदेव की बस्ती में चलेंगे?

अवधूत—जब खोज में निकले तो उसके घर चल कर पता लेना आवश्यक है। बिना वहाँ गये हुए कार्य कैसे सिद्ध होगा! तू मेरा प्रारब्ध कर्म है। इसलिये उसका भोग तो भोगना ही

पड़ेगा।

विशाखा—क्या इस यात्रा को आप दुख का कारण समझते हैं?

अवधूत—नहीं बावली! अब मेरे लिये न कहीं सुख है न दुख है। जो कुछ होना था हो चुका। थोड़े से प्रारब्ध कर्म रह गये हैं, वह इस तरह कट जायेंगे।

दूसरे दिन अवधूत और विशाखा कुटी से पश्चिम की ओर चल खड़े हुए और दो तीन दिन पीछे पटना में पहुँच गये।

पाँचवाँ अध्याय

पटना शहर

पटना हवेलियों और आदमियों का समुद्र था। विशाखा शहर को देख कर बहुत ही प्रसन्न हुई। मनुष्यों की यह पहली आबादी थी जिसे उसने देखा था।

बुद्धि विवेक और अनुभव की दृष्टि से वह बड़ी बूढ़ी कही जा सकती थी परन्तु उसकी अवस्था अभी थोड़ी थी। बच्चे नई जगह और नये दृश्य को देख कर प्रफुल्लित हो जाते हैं। इस अवस्था में नई नई वस्तुओं के देखने से विशेष आनन्द प्राप्त होता है। वह एक नई दुनिया में आगई जो गंगा के किनारे वाली कुटी की दुनिया से एक दम भिन्न थी। उसने शहर के स्त्री पुरुषों और बाल बच्चों को देखा। यह सब के सब अच्छे अच्छे वस्त्र पहने हुये थे। स्त्रियाँ भूषणों से सुशोभित थीं। यह दृश्य उसकी आँखों के लिये एक दम नया था जिसका वह कभी अनुभव भी नहीं कर सकती थी। अब उसे अवसर मिला कि वह अपने और शहर वालों के जीवन व्यवहार और रहन

सहन पर विचार करे। यों तो वह ज्ञानी हो चली थी। अवधूत के सत्संग से उसकी बुद्धि, विवेक और अनुभव शक्ति ऐसी उभर गई थी कि बड़े बड़े पंडित भी उसका सामना नहीं कर सकते थे। फिर भी वह शहर के लोगों को देख कर अपने आप को असभ्य और भद्दी समझने लगी और बात भी सच्ची थी। शहर का बनाव सिंगार सीधे सादे देहातियों में कहाँ! शहर की सभ्यता और निखार का जादू विशाखा के मन को लुभाने लगा।

अवधूत पटना की सड़कें, गलियाँ, बाग, हवेलियाँ उसे दिखाता लाया। जो जो स्थान राह में पड़े उसने सब देखे। अन्त में वह उसे साथ लिये हुये बौद्धों के विहार में आया। उसकी सैर की। भिक्षु सब काम में लगे हुये थे। यह अवधूत ही था। वेदान्ती तो इसे किसी किसी अर्थ में कहा जा सकता था परन्तु वास्तव में वह इस से भी ऊँचा चढ़ आया था। अब उस में धार्मिक बन्धन का नाम तक नहीं था। अवधूत मस्त होते हैं और यह मस्त अवधूत था। इस की मस्ती भी साधारण मस्ती नहीं थी। औरों की मस्ती में कुछ बनावट होती हैं और इस दशा में वह गृहस्थियों के साथ रहना तक पसन्द नहीं करते। स्त्री और लड़की का साथ रहना तो दूर रहा। परन्तु इसके साथ विशाखा थी और इसे ध्यान भी नहीं था कि कोई इस अनमेल बे जोड़ को देख कर क्या कहेगा! वह इस दरजे से कहीं ऊँचा चढ़ गया था जहाँ उच्च विचार वाले मनुष्यों को सर्व साधारण की राय की परवाह तक नहीं होती। बौद्ध भिक्षुओं ने उसे "नमोपद्मे ऽहं" कह कर नमस्कार किया। उसने वैसा ही उत्तर में कहा। लड़की को मरदाना विहार की सैर कराकर भिक्षुनियों का विहार दिखाना चाहा। वह मर्द था। स्त्रियों के विहार में पुरुष नहीं जा सकते थे। यह धार्मिक नियम

था। एक भिक्षुनी सामने से निकली। अवधूत ने उसे बुलाकर विशाखा को अन्दर लिवा जाने के लिये कहा। यह उसके साथ गई। जो बातें भिक्षुओं के विहार में थीं वही भिक्षुनियों के यहाँ भी दिखलाई दीं—पाठशाला, मन्दिर, सत्संग और भंडार सब का उचित प्रबन्ध था। यहाँ जो नई बात विशाखा ने देखी वह यह थी कि बाल बच्चे वाली स्त्रियों भी विहार में रहती थीं। इस से पता लगता था कि हर अवस्था की स्त्रियाँ विहार में ली जा सकती थीं और आत्मिक शिक्षा का द्वार किसी के लिये भी बन्द नहीं था। अवधूत बाहर उसकी राह देख रहा था। स्त्री सब कुछ दिखलाकर विशाखा को अवधूत के पास लाई। तब वह उसे लेकर गंगा के किनारे गया। दोनों थके थकाये थे, नहा धोकर खाना खाया। फिर वहाँ ही घाट पर विश्राम करने के लिये बैठ गये।

अवधूत ने पूछा—तूने शहर देख लिया?

विशाखा ने उत्तर दिया--कुछ तो देख लिया।

अवधूत—क्या समझा? कुटी अच्छी है या शहर अच्छा है?

विशाखा--अच्छा बुरा एक दूसरे की दृष्टि से कहा जाता है। इसलिये एक दिन के देखने से कोई सच्ची राय नहीं दी जा सकती।

अवधूत--तू बड़ी समझदार है।

विशाखा--यहाँ का जीवन और है, कुटी का और है। दोनों में भेद तो होना ही है। कहीं अशान्ति और चहल पहल है। कहीं शान्ति और एकान्त का आनन्द है। किसी जगह की अवस्था इन दोनों के विरुद्ध है। संसार तीन गुणों से बना हुआ है। इसलिये उसकी अवस्था भी तीन ही तरह की होगी। जो मनुष्य जिस अवस्था में है उसके लिये प्रकृति ने वर्तमान काल में वही अवस्था उचित समझ रक्खी है। उसकी आगामी

अवस्था इसी के अनुसार होगी।

अवधूत—तेरी अवस्था तो बहुत थोड़ी है परन्तु बातें ज्ञानियों की तरह करती है। यह बड़े आश्चर्य की बात है। अब तू यह बता कि पटना में कब तक रहना चाहती है? जैसा तू कहेगी वैसा ही प्रबन्ध किया जायेगा।

विशाखा—पटना तो बीच में आ गया है। यहाँ हमारा कोई विशेष काम नहीं है। यहाँ आ गये अच्छा हुआ। इस बड़े शहर को देख लिया। जहाँ चलना है वहाँ के लिये कमर बाँधनी चाहिए।

अवधूत—तू ठीक कहती है। अच्छा! आज तो किसी मठ में चलकर रहेंगे। कल आगे अपनी राह लेंगे।

जिस जगह अवधूत और विशाखा बैठकर बातचीत कर रहे थे उसका नाम सिद्धार्थ घाट था। बुद्ध भगवान उसी घाट से पार गये थे, इसलिये उसका नाम ऐसा रख लिया गया। बात चीत समाप्त हो जाने पर यह दरिया का बहाव देखने लगे। उस समय व्यापारियों के माल असबाब नाव और जहाज में आया जाया करते थे। एक नाव आती थी दूसरी जाती थी। कोई असबाब से लदी हुई बड़ी नाव है। कोई मछलियों के शिकार खेलने की डोंगी है और किसी पर आदमी बैठे हुए दरिया की सैर कर रहे हैं। घाट पर नहाने वालों की बहुत बड़ी भीड़ थी। सम्भव है उस दिन कोई उत्सव या पर्व रहा हो। नाव के आने जाने का तार बँधा हुआ था। हर नाव पर नये नये दृश्य देखने में आते थे। विशाखा इस तमाशे में अपने आपको एकदम भूल गई। अवधूत की दशा कुछ और थी। दोनों ही टकटकी बाँधकर नावों को देख रहे थे। इतने में एक नाव घाट से निकली, दूर तक आगे बढ़ गई और फिर वहीं लौटकर ठहर गई, जहाँ अवधूत और विशाखा बैठे हुए दरिया

का तमाशा देख रहे थे। एक आदमी नाव से उतरा। वह अच्छे कपड़े पहिने हुए था। उसने आते ही अवधूत के पांव पर सर झुकाया और विशाखा की ओर देखकर मुसकराने लगा।

यह आदमी शुकदेव था।

संयोग वश हमारे ढूँढ़ने वालों को अधिक कष्ट नहीं उठाना पड़ा। वह जिसकी खोज में निकले थे पहिले ही दिन आप ही आप हाथ आ गया। यह भी आश्चर्य की बात है कि रामगढ़ के आदमी उसकी खोज में आये और शुकदेव उनके हाथ नहीं लगा। यह उसे ढूँढ़ने रामगढ़ जा रहे थे और यह आप बीच में मिल गया। ऐसी आश्चर्यजनक घटनायें बराबर होती रहती हैं। यह कोई नई बात नहीं है।

अवधूत ने पूछा—अच्छे हो शुकदेव!

शुकदेव ने उत्तर दिया—जिस पर आपकी दया दृष्टि हो उसके अच्छे होने में क्या सन्देह हो सकता है?

अवधूत—तुम ने तो हमें अपना हाल तक नहीं दिया। इस लिये हम आप तुम्हारी खोज में उठ खड़े हुए।

शुकदेव का रंग कुछ फीका सा पड़ गया। उसने अपने आपको सँभालकर कहा—नाव पर बैठ जाइये। मेरी कोठी दरिया के किनारे है। वहाँ चलकर उसे पवित्र कीजिये। फिर मैं अपना हाल आपको सुनाऊँगा।

अवधूत ने विशाखा की ओर आँख उठाई। दोनों उठ बैठे शुकदेव उनके साथ नाव पर बैठा। वह बहाव पर चल निकली। राह में कोई बातचीत अवधूत ने नहीं की। विशाखा और अवधूत के मन में खटका उत्पन्न हो गया था कि शुकदेव की नीयत ठीक नहीं है और शुकदेव की दशा चोर की दाढ़ी में तिनका जैसी थी। नौका घाट पर लगी, तीनों उतरे, और सीढ़ियों पर चढ़कर एक सजे सजाये बँगले में आये जो गंगा

के तट पर बना हुआ था।

शुकदेव ने अवधूत से हाथ बांधकर कहा—महाराज! यही मेरे रहने की जगह है। अब यह स्थान आपके चरण कमल से पवित्र हो जायेगा।

छठवाँ अध्याय

शुकदेव और अतिथि

शुकदेव ने अपने नौकरों को हुक्म दिया कि वह अवधूत और विशाखा के रहने और नहाने धोने का उचित प्रबन्ध कर दें। दम के दम में सारा सामान ठीक हो गया! दो अलग अलग कमरों में उनके रहने के लिये फर्श बिछवा दिये गये। इन दोनों का जीवन व्यवहार सीधा सादा था। शुकदेव के सामान इनके किस काम के थे? दिन डूबने से पहिले दोनों ने थोड़ा सा दूध पी लिया और फिर बातचीत होने लगी।

शुकदेव ने कहा—मैं रोम रोम से आपका कृतज्ञ हूं। यदि आप न होते तो आज किसी को मेरे नाम तक का पता न होता।

अवधूत बोला—एक ही बात के बार बार कहने की आवश्यकता नहीं है। हम लोग सीधे सादे आदमी हैं। सभ्यता हम में नाम के लिए भी नहीं है। इस समय हम केवल तुम्हारी खोज में आये हैं।

शुकदेव—मैं समझता हूँ। मुझे आप ही आपकी सेवा में आना चाहिए था परन्तु काम काज इतना बढ़ गया है कि दम मारने की भी छुट्टी नहीं मिलती। यह सब काम आपके दिये हुए रुपये से चल रहा है।

अवधूत—हम रुपया माँगने नहीं आये हैं और न हमें उस का ध्यान है।

शुकदेव—मैं इसे जानता हूँ। जब कुटी से चल कर यहाँ आया अपने नाना और मामा से मिला। उन्होंने मेरी सहायता की। कई गाँव मोल लिये गये। लेने देने का सिलसिला चल निकला। अब मैं इसी के चक्कर में पड़ा रहता हूँ।

अवधूत—बहुत अच्छी बात है। तुम जवान आदमी हो। जवानों के लिये काम काज में लगा रहना ही अच्छा होता है। इस समय हम केवल विशाखा के लिये आये हैं। पता लेना था कि तुम अपने बचन पर आरूढ़ हो या नहीं या तुम्हारी नीयत बदल गई?

शुकदेव उत्तर देने में हिचकिचाया। मेरी नीयत नहीं बदली परन्तु मुझे उन लोगों के साथ बदला लेना है जिन्होंने मुझपर अत्याचार किया था। इसलिये आप के पास आने में देर हुई।

अवधूत—क्या तुम्हारा इशारा अपने माँ बाप की बदसलूकी की ओर है।

शुकदेव —जी हाँ! यही बात है।

अवधूत—क्या उन्हें तुम्हारा हाल पूरा पूरा मिल गया है?

शुकदेव—मिला भी है और नहीं भी मिला है।

अवधूत—तुम कैसी गोल मोल बातें कर रहे हो!

शुकदेव-वह समझते हैं कि मैं मर गया हूँ। नाना और मामा को मैंने समझा दिया है कि वह मेरा पता उन्हें न दें और यह मान भी गये हैं। मैं आप रामगढ़ गया और झटपट चला आया। कई आदमियों ने मुझे देख लिया। उन्होंने माँ बाप से जा कर कहा। वह समझते हैं मैं भूत होगया हूँ और मन में काँपते रहते हैं।

अवधूत--गंवार आदमियों का हर जगह यही हाल है।

शुकदेव—इसी तरह मैं लक्ष्मण नगर भी गया वहाँ मेरी

शुकदेव--यह बात सुनकर काँप उठा। विशाखा आश्चर्य के साथ इनकी बातों को चुपचाप सुनती रही।

शुकदेव ने कहा—आपको क्रोध न करना चाहिए। मेरी दशा पर भी आपको ध्यान रखना आवश्यक है। आपकी दृष्टि में मेरी और विशाखा की एक हैसियत है।

अवधूत—यहाँ तुम भूल रहे हो। मैं सभ्य मनुष्यों की तरह झूठी बातें करना पसन्द नहीं करता। विशाखा को मैंने पाला पोसा है। वह मेरी धर्म की लड़की है। तुम्हारे साथ मेरा कोई सम्बन्ध न था और न है। जो कुछ आगे चलकर सम्बन्ध होगा या न होगा वह भी विशाखा के सम्बन्ध से होगा। तुम भूत बनकर अपने सम्बन्धियों को डराया करो परन्तु अभी तक तुमको किसी साधू से काम नहीं पड़ा है। आगे जो बात हो सोच समझकर हो। साधू जितने ही सरल स्वभाव होते हैं उतने ही उनके स्वभाव में कड़ाई भी होती है। इसका भी पता अब तुम्हें लग जायगा।

शुकदेव अवधूत के पांव पर गिरा—मैंने यदि किसी अनुचित शब्द का प्रयोग किया हो तो उसे क्षमा कीजिये। आपकी आज्ञा मेरे सर आँखों पर है।

अवधूत—मैं दबाव से कभी काम लेना पसन्द नहीं करता। तुम केवल यह बताओ कि अपने वादे का ध्यान भी तुमको है या नहीं?

शुकदेव—ध्यान है।

अवधूत—बहुत अच्छा! यदि यह बात है तो क्या तुम अब भी लक्ष्मी की धुन में हो?

शुकदेव आप से झूठ बोलने का साहस नहीं होता। यह ध्यान अपने सम्बन्धियों से केवल बदला लेने के लिये है।

अवधूत—तुम किस तरह का बदला लेना चाहते हो ? क्या उनके मारने की नीयत है ?

शुकदेव—नहीं। केवल नीचा दिखाना है।

अवधूत– तुम्हारी बातों से पता लग गया कि वह तंग हुए और हो रहे हैं। अब इसे जारी रखना अच्छा नहीं है।

शुकदेव—फिर मैं क्या करूँ ?

अवधूत—यदि मेरी बात मानते हो तो यह सारा झगड़ा मेरे ऊपर छोड़ो। मैं इस गुत्थी को बड़ी सुन्दरता के साथ सुलझा दूंगा। न तुम जाति बिरादरी से निकाले जाओगे और न तुम्हारा अपमान होगा। अब मुझे विशाखा से राय लेने की आवश्यकता पड़ गई। यदि तुम्हारी आज की बातों से उसका दिल फिर गया तो फिर मैं उसे भी स्वतन्त्र कर दूंगा और तुम से भी कभी बातचीत न करूँगा।

शुकदेव अवधूत की बातों से घबरा गया। उस समय लोग साधू, सन्यासी और भिक्षुओं से बहुत डरा करते थे। बुद्ध भगवान आप ऐसे ही महात्मा थे। इन्होंने जाति का बहुत बड़ा सुधार किया। इन्हीं के कारण साधु महात्माओं की प्रतिष्ठा बहुत ही बढ़ गई। विहारों में यही भिक्षु आचार्य, वैद्य, जज और मुन्सिफ़ के काम किया करते थे। इनके फैसले की अपील कहीं नहीं होती थी। इनका काम निष्काम हुआ करता था। यही कारण था कि सोसायटी इनका हुक्म आँख बन्द करके मानती थी और छोटे बड़े राजा प्रजा सब को इनका लोहा मानना पड़ता था। दुनिया के सच्चे हाकिम और जातियों के बनाने वाले और सुधारने वाले यही लोग होते हैं।

सातवाँ अध्याय

विशाखा की सम्मति

अवधूत ने विशाखा से पूछा—बेटी ! तूने मेरी और शुकदेव की बातचीत सुन लीं। अब तू क्या कहती है ? उसके साथ रहना चाहती है या कुटी में चलने की इच्छा है ?

विशाखा—भगवन् ! मैं अपने विचार को बदलना नहीं चाहती। जीवन अनुभव प्राप्त करने के लिये है। यदि आज अपने विचार को बदलती हूं तो स्वभाव में द्विचिताई आ जायेगी और संस्कार भ्रष्ट हो जाऊँगी। शुकदेव केवल मेरे कुलीन होने का प्रमाण चाहता है। यदि आप इसे साबित कर सकते हैं तो मुझे इन्कार नहीं है। मैं इसके स्वभाव को अपनी सहन शीलता और योग्यता से बदल दूँगी और मेरे प्रारब्ध भी भोगने से कट जायेंगे।

अवधूत—शुकदेव ! तुम ने इस पवित्र देवी का फैसला सुन लिया। अब मैं तुम को आज्ञा देता हूँ कि अपना विचार स्पष्ट शब्दों में प्रकट करो। विशाखा शाहवार मोती है जो किसी राजा के मुकुट को सुशोभित कर सकती है। यह साधारण स्त्री नहीं है। इसका विचार और भाव बहुत ही ऊँचा है। यह तुम को सच्चा ज्ञानी बना देगी।

शुकदेव—मुझे इसके साथ रहने में कोई इनकार नहीं है। मैं हर तरह से तैयार हूँ। यदि आप इसके कुलीन ब्राह्मणी होने का प्रमाण दे सकें तो मेरे नाना और मामा को भी कोई इन्कार न होगा परन्तु मैं इसके लिये ठीक वादा नहीं कर सकता।

अवधूत—मैं किसी काम को अधूरा नहीं रखता। यह मौत और जिन्दगी का सवाल है। कच्चा काम रखना मेरे स्वभाव

के विरुद्ध है। मैं इसे पसन्द नहीं करता। इस में सन्देह नहीं कि रात बहुत हो गई है फिर भी तुम अपने मामा और नाना को अभी बुला भेजो। मैं इन्हें समझा दूँ। यदि वह न मानेंगे तो मैं इसी समय इस जगह से चला जाऊँगा। मैंने भूल से आज तुम्हारा दूध पी लिया। अब कल से उस समय तक तुम्हारा अन्न जल स्वीकार नहीं करूँगा जब तक कि यह बात निश्चय रूप से पक्की न हो जायेगी।

शुकदेव अवधूत की बातों से भयभीत हो गया। उसने उसी समय आदमी भेजे सब लोग गहिरी नींद में चूर थे। आदमियों के पहुंचते ही चौंक कर उठे और दरिया के किनारे शुकदेव की कोठी पर चले आये।

अवधूत, शुकदेव और विशाखा तीनों ही चुपचाप बैठे हुए थे, नाना और मामा आये, अवधूत को नमस्कार किया और हाथ बाँधकर पूछा—भगवन् आप ने बड़ी दया की, हम लोग आपकी अपार दया का हाल सुन चुके हैं। आप शुकदेव के प्राण देने वाले और उसके जिलाने वाले हैं। कहिये क्या आज्ञा है?

अवधूत—इस समय इस लड़की विशाखा की किस्मत का फैसला होने वाला है। शुकदेव की जान बचाने वाली यह है। शुकदेव ने आप इससे विवाह करने की प्रार्थना की। यह अपने सरल स्वभाव से उसकी बात मान गई। शुकदेव को अब इन्कार है। यदि इस लड़की के कुल और गोत्र का पता लग जाये तब तो वह इसके साथ विवाह करेगा। यों उसे बिरादरी से निकाले जाने का भय है। विशाखा इसके अतिरिक्त अब और किसी के साथ रहना नहीं चाहती। मैंने आप लोगों को इसलिये कष्ट दिया है कि इस गुत्थी को सुलझाने में मेरी सहा-

यता कीजिये, जिसमें मैं दूध का दूध और पानी का पानी कर दिखाऊँ। आपको भी इस बात का पूरा पूरा निश्चय हो जाये। यह दोनों इँसी खुशी के साथ गृहस्थाश्रम में प्रवेश करें और मैं जंगल की राह लूँ।

मामा, नाना—जो आज्ञा हो हम उसके पालन करने के लिये तैयार हैं।

अवधूत—अधिक कहने सुनने की आवश्यकता नहीं है। आप दो पत्र लिखिये—एक रामगढ़ के जमींदार शिवदत्त के नाम, दूसरा लक्ष्मण नगर के रईस शुद्धोदन के नाम। दोनों अपने अपने कुटुम्ब के साथ यहाँ परसों अवश्य आ जायें जिसमें इसका फैसला कर दिया जाये। जब तक यह काम न हो लेगा मेरे लिये खाना पीना हराम है।

मामा, नाना—पत्र हम ही लिख दें या आप लिखायेंगे ?

अवधूत—मैं लिखा दूँगा। कलमदान कागज मँगवाइये।

शुकदेव के आदमी जो अभी तक जाग रहे थे लिखने पढ़ने का सामान दूसरे कमरे से उठा लाये और अवधूत ने इस तरह दोनों पत्र लिखा दिये:—

पहिला पत्र

श्रीमान् पं० शिवदत्त पाण्डे,
इलाकेदार—रामगढ़।

नमस्कार के पश्चात निवेदन है कि आपके लड़के शुकदेव की जिन्दगी और मौत का सवाल आन पड़ा है। यदि आप परसों रामदेव और चन्द्रमुखी के साथ आ जायें तो वह बहुत बड़ी आपत्ति से बच जायेगा और कोई विशेष कष्ट न उठाना पड़ेगा। एक अवधूत फ़कीर बीच में पड़े हैं। जब तक आप न आयेंगे महात्मा जी अन्न जल न करेंगे। यह पाप आप लोगों

के सर पर होगा। इस थोड़े लिखने को बहुत समझियेगा। यदि वहाँ खाना खाते हों तो पानी यहीं आकर पीजिये।

शुभ चिन्तक

(शुकदेव के नाना और मामा)

दूसरा पत्र

श्रीमान् पं० शुद्धोदन जी उपाध्याय.

रईस, लक्ष्मण नगर।

सविनय नमस्कार स्वीकार हो।

आप हमारे नाम से परिचित हैं। अत्यन्त आवश्यकता के कारण मैं आपको कष्ट देने का साहस कर रहा हूं। शुकदेव पटना में है। उसके विवाह की बात छिड़ी हुई है। परसों उसका फैसला आप के सामने किया जायेगा। परसों अवश्य आपको यहाँ आ जाना चाहिए। यदि आप किसी कारण से उस दिन न आ सके तो आपको जीवन पर्यन्त पछताना पड़ेगा। ऐसा लिखना असभ्य है परन्तु आपके हितार्थ लिखा जाता है। एक अवधूत जी महाराज इसके फैसला करने के लिये यहाँ आये हैं। उन्होंने प्रण किया है कि जब तक यह काम न हो जायेगा वह पानी का घूँट भी गले से नीचे न उतारेंगे। इसलिये आपका परसों आ जाना बहुत ही आवश्यक है।

काँटों में अगर न हो उलझना।
थोड़ा लिखना बहुत समझना॥

भवदीय

(शुकदेव के नाना और मामा)

बातचीत करते और पत्र लिखते लिखाते रात के चार बज गये। उस दिन रात में किसी को सोने का अवसर नहीं मिला।

अवधूत और विशाखा को विश्राम करना आवश्यक था क्योंकि कई दिन के थके माँदे थे परन्तु वह जागते रहे और उनके साथ सब को जागना पड़ा।

पत्र लिख जाने पर दोनों जगह आदमी भेजे गये। फिर लोग उठे और सोने चले गये। अवधूत और विशाखा ने तो उसी जगह अपने कमरों में चटाई बिछा ली। मामा नाना अपने घर गये और शुकदेव अपने पलंग पर लेटा हुआ सारी बातों पर विचार करने लगा।

आठवाँ अध्याय

अवधूत का व्रत

अपनी समझ में तो नाना मामा ने आदमी भेज कर उनके बुलवाने का उचित प्रबन्ध कर दिया। वह अपने घर जाकर काम काज में लगे परन्तु कागजी घुड़ दौड़ का परिणाम कुछ नहीं हुआ। आज गया। कल गया और परसों आया। सारा दिन लोग राह देखते रहे। न रामगढ़ से कोई आया, न लक्ष्मण नगर का आदमी दिखाई दिया। ऐसा क्यों हुआ ? क्योंकि उस समय साधु और भिक्षु का नाम सुनते ही श्रद्धा और विश्वास की वृद्धि होती थी और लोगों के दिलों पर उनका रोब छा जाता था। इस का कारण यह है कि शुकदेव के विषय में सब को सन्देह था। कोई कहता था वह जीता है, कोई कहता था वह मर गया है और यह उसका भूत है जो स्थूल शरीर धारण करके लोगों को डराता और धमकाता रहता है। पटना के आदमियों का सन्देश भी उनकी समझ में ऐसा ही था, दोनों गाँव के आदमी मिले—देर तक बहस होती रही और

सब इस नतीजे पर पहुँचे कि यदि शुकदेव जीता है तो फिर अपने घर क्यों नहीं आता और दूर दूर रह कर क्यों उनको बुलाता है। सम्भव है इस ढंग से वह उनको और भी दुखी करे। इस भाव के पुष्ट होने के लिये शुकदेव ने बहुत कुछ उद्योग भी किया था। उसने इन दोनों घरानों को डरा डरा कर दण्ड देना उचित समझा था। वह इसके हाथों महा दुखी थे और उसे भूत समझ रहे थे। उन्होंने भूत के डर से घर छोड़ कर लड़के वालों के साथ पटना जाने में अपनी हँसी समझी।

तीन दिन हो गये एक आदमी भी नहीं आया। इधर अवधूत ने तीन दिन तीन रात न कुछ खाना खाया न पानी पिया। शुकदेव और उसके मामा नाना ने समझा बुझा कर खिलाना चाहा परन्तु उसने अपना व्रत तोड़ने से इन्कार कर दिया। व्रत का नियम हिन्दुओं में हजारों वर्ष से चला आता है। इसका आशय कभी कुछ और कभी कुछ समझा गया परन्तु इसका काम अब तक किसी न किसी रूप में चला आता है और सब उसका पालन भी करते हैं। वास्तव में व्रत केवल दृढ़ प्रतिज्ञा को कहते हैं। यह सामाजिक, धार्मिक और कई प्रकार का होता है और मनुष्य की अपनी मानसिक इच्छा और सच्ची नीयत का फल होता है। यह संकल्प शक्ति के दृढ़ करने का नियम था। इसके अतिरिक्त और कोई बात नहीं थी। धीरे धीरे इस की सूरतें बदलती गईं। जप, तप, प्रायश्चित, ब्रह्मचर्य्य, विरक्तता और काया के कष्ट देने की सूरतें दिन दिन बढ़ती गईं। अब केवल भूखा रहना ही व्रत समझा जाने लगा। हर दान करने के पहिले इस तरह का व्रत रक्खा जाता है। अँग्रेजी राज्य से पहले ब्राह्मण भूखे रहने का भय दिला कर अपना कार्य सिद्ध किया करते थे। पूर्व की भाषा में इसे "धरना देना" बोलते हैं। किसी ने रुष्ट होकर अपने बाल बढ़ा लिये और प्रतिज्ञा कर

ली कि जब तक मेरा काम सिद्ध न होगा मैं हजामत न बनवाऊँगा। किसी ने जनेऊ उतार कर फेंक दिया और संकल्प कर लिया कि जब तक काम न होगा न नहाऊँगा न खाना पीना करूँगा। इस तरह की घटनाओं को भी व्रत कहते हैं; किसी विशेष भाव के धारण करने और उस पर दृढ़ता के साथ आरूढ़ रहने को धरना (धारना) का व्रत कहते थे। मुसलमानी राज में इसे 'शेवै ब्राह्मनी' का नाम दिया जाता था।

तीन दिन हो गये और अवधूत खाने पीने से बराबर इनकार करता रहा। अब तो सब डरे और उन्हें विश्वास हो गया कि यह प्राण दे देगा। उसकी देखा देखी विशाखा ने भी खाना नहीं खाया। किसी का समझाना बुझाना काम नहीं आया।

नाना, मामा के होश उड़े। यह आप लक्ष्मण नगर और रामगढ़ की ओर दौड़े, दोनों को समझाया बुझाया, उनके भ्रम को दूर करना चाहा। यह पूछते थे कि शुकदेव को मरे हुए साल भर हुए, वह संसार में फिर कैसे आ गया? इसका उत्तर इनके पास कोई नहीं था। और कभी कभी यह आप भी चकित हो जाते थे क्योंकि उसके मरने का समाचार सुन चुके थे। शुकदेव की बातों पर उन्हें भी विश्वास नहीं होता था। फिर भी इन्होंने शिवदत्त और शुद्धोदन को मना ही लिया और पूरे सात दिन के पीछे सब के सब पटना में आये और दरिया के किनारे वाली कोठी में ठहरे।

शुकदेव को उनके आने का हाल मिला परन्तु उसने अवधूत से आज्ञा ले रक्खी थी कि वह नियत समय से पहिले उनसे न मिलेगा!

यह आये और उनके साथ दोनों गाँव के बहुत से आदमी तमाशा देखने के लिये चले आये। यह उनके सम्बन्धी, इष्ट मित्र और पड़ोसी थे। सब को यदि और नहीं तो भूत देखने की

इच्छा खींच लाई। भूतों को मानते भी हैं और नहीं भी मानते। सर्व साधारण का विश्वास है कि भूत किसी को दिखाई देते हैं और किसी को दिखाई नहीं देते। यहाँ एक तरह पर इसका निर्णय होने वाला था। इसलिये सब के सब तमाशा देखने के लिये उत्सुक होकर आप ही आप चले आये।

दिन नियत किया गया, अवधूत से प्रार्थना की गई कि वह अपना काम पूर्ण करके व्रत को तोड़ दे। वह अपनी जगह से उठा। उसके मुख पर विशेष कान्ति थी। दस बारह दिन भूखे रहने से उसमें कमज़ोरी नहीं आई। उसके आते ही सब लोग उठ खड़े हुए और उसे नमस्कार किया। जब वह आसन पर बैठ गया, यह भी उसके चारों ओर हलका मार कर बैठ गये।

अवधूत ने लोगों पर गहिरी दृष्टि डाली। वह शिवदत्त और शुद्धोदन को जानता था। यह दोनों न उसे जानते थे न पहिचानते थे। जब अवधूत ने निश्चय के साथ उन्हें पहिचान लिया, उसने शिवदत्त और शुद्धोदन से कहा—ब्राह्मणो! कैसे शोक की बात है कि तुम पढ़े लिखे होकर भी गँवारों जैसा व्यवहार कर रहे हो! तुम दोनों शुकदेव को भूत समझ रहे हो और उसके भय से तुम्हारी जान निकल रही है। भूतों के होने या न होने के विषय में इस समय बात नहीं की जाती। वास्तव में भूत गुजरे हुए जमाने, बिखर कर सिमटे हुए या सिमट कर बिखरे हुए तत्व को कहते हैं। संस्कृत भाषा में भूत शब्द के अनेकों अर्थ हैं—गुजरा हुआ, मिला हुआ, जीता हुआ, सच्चा, जाना हुआ, लड़का, सन्तान, शिव का नाम और तत्व इत्यादि इत्यादि। किसी सच्ची घटना को भी भूत कहते हैं। भूत प्रेत और चुड़ैल का भी नाम है परन्तु यहाँ उससे कोई सम्बन्ध नहीं है। तुम आ गये अच्छा किया। मैं इस समय तुम को भूत दिखलाऊँगा और तुम समझ जाओगे कि मैं भूत किसे

समझता हूं और किसे समझा रहा हूँ।

सुनने वाले एक दूसरे का मुँह देखने लगे, वह तो एक भूत देखने आये थे। यहाँ अवधूत दो भूत दिखाना चाहता है। सब के सब भूत की राह देखने लगे।

अवधूत ने हुक्म दिया—शुकदेव को सामने लाओ।

शुकदेव कमरे के भीतर से बाहर आया, माँ बाप और भाई को हाथ बाँधकर नमस्कार किया। उसे घर से निकले या निकाले हुए साल भर के लगभग हो गया था। पहिले वह दुबला पतला था। अब कारबार में उन्नति होने और रुपया इकट्ठा होने के कारण कुछ मोटा हो गया था। उसका मुख कान्ति से दमक रहा था। सब ने उसे देखा परन्तु न तो किसी ने उसके नमस्कार का उत्तर दिया और न उससे मिलने का साहस किया।

अवधूत उनकी अवस्था देखकर उनके भाव को भाँप गया और बोला—यह भूत है। तुमने इसे मुर्दा समझ कर दरिया में बहा दिया था। लहरों के थपेड़ों ने इसे ले जाकर मेरी कुटी के पास डाल दिया। मैं एक लड़की के साथ नहाने आया हुआ था। लड़की दया की मूर्ति थी। उसने इसे मूर्च्छित समझा, दौड़ गई और दवा पिलाई। इसने अँगड़ाई ली। मैं लड़की की सहायता से अपनी कुटी पर उठा लाया। सात दिन पीछे इसकी कमजोरी जाती रही। इसने कारबार करने की नीयत से रुपये माँगे। लड़की के पास दो हजार रुपये की अशरफियाँ थीं। उसने इसे दे दीं। यह पटना आया और काम काज में लगा। ईश्वर ने सहायता की और अब यह तुम लोगों के सामने खड़ा है।

इस पर भी शिवदत्त और उसके घर वालों ने टस से मस नहीं की। तब अवधूत ने चन्द्रमुखी की ओर देखकर कहा—

देवी ! शुकदेव को दवा पिलाते समय उसके पेट से हलाहल विष निकला। यदि यह न निकलता तो उसके मरने में कोई सन्देह नहीं था। यह तेरा लड़का है। यदि तुझे मेरी बात पर विश्वास है तो उठ ! इसके सर पर प्रेम का हाथ फेर और इसे अपना लड़का स्वीकार कर !

चन्द्रमुखी उठी, शुकदेव के पास आई। वह अभी जवान थी परन्तु उसके पाँव पड़ते ही उसने उसे अपनी छाती से चिपटा कर सर पर हाथ फेरा। तू मेरा लड़का है और आज से मैं तुझे सौतेला लड़का न समझूँगी।

दोनों की आँखों से प्रेम के आँसू बह निकले। रामदेव और शिवदत्त दंग रह गये।

अवधूत ने फिर उनको कहा—तुम शुकदेव से मिलो, यह भूत नहीं है, तुम्हारा बेटा और भाई है। यह दोनों उठकर शुकदेव के गले मिले। अब भूत का भ्रम उनके हृदय से जाता रहा। शुकदेव अपने घर वालों के साथ बैठ गया।

अवधूत ने फिर कहा—एक भूत तो तुम ने देख लिया। अब दूसरे की बारी है। विशाखा ! तू सामने आ जा।

विशाखा कमरे से निकल आई—सीधी सादी, गोरा शरीर, अंग अंग सांचे में ढला हुआ, सर से पाँव तक सौन्दर्य की साक्षात् देवी ! विशाखा का नाम सुनते ही शुद्धोदन की स्त्री का सर चकराने लगा परन्तु उसने अपने आपको सँभाल रक्खा।

अवधूत ने कहा—मैं प्रातः काल गाँव में घूम रहा था। यह लड़की कपड़ों में लिपटी हुई रो रही थी। इसे माता के गर्भ से निकले हुये देर नहीं हुई थी। मैंने समझा इसकी माँ मर गई और इसे भी मुर्दा समझकर घर वाले बाहर छोड़ गये होंगे। मुझे दया आई, लड़की को गोद में उठा लाया। उसके कपड़ों में दो हजार रुपये की मालियत की अशरफियाँ बँधी थीं और

कपड़े पर 'विशाखा' नाम खिचा हुआ था। मैं इसे ले गया। यहाँ से कुछ दूर पर मेरी कुटी है। वहीं इसे पाला पोसा और बड़ी किया। पूछने पर पता लगा कि यह शुद्धोदन की लड़की है। मैं अच्छे अवसर की खोज में था। वह दिन आज आ गया है।

इस घटना को सुनकर सब लोग चकित हो गये और आश्चर्य की दृष्टि से विशाखा को देखने लगे।

अवधूत ने चन्द्रप्रभा से कहा—माई! यह तेरी लड़की है। क्या तू इसे अपनी लड़की मानने से इन्कार करती है? शुकदेव को दो हजार रुपये की अशरफी देने वाली यही लड़की है।

चन्द्रप्रभा अवधूत का मतलब समझ गई। उसने उठकर विशाखा को अपने गले लगा लिया। शुद्धोदन भी बात की तह तक पहुँच गया। उसकी आँखों में आँसू भर आये। उसने लड़की के सर पर हाथ फेरा और वह अपनी सौतेली माँ के पास बैठ गई।

नवाँ अध्याय

फैसला

सन्नाटा छा गया। सब के सब चकित हो गये। शुकदेव के भूत होने की बात लोगों के दिलों से जाती रही। साथ ही दोनों घरानों को सच्चा आनन्द प्राप्त हुआ।

मामा नाना ने अवधूत से कहा—भगवान! आप की अपार दया से आज वर्षों के बिछुड़े मिल गये, लोगों का भ्रम जाता रहा। अब तो आप नहाइये, धोइये, भोजन कीजिये जिससे जो पाप हमारे सरों पर चढ़ रहा है वह दूर हो।

अवधूत चुप रहा। लोग अपने अपने मन में क्या क्या सोचते रहे होंगे, इसका किसे पता है! हाँ! इतना तो सब समझ गये कि विशाखा और शुकदेव के साथ बहुत बड़ा अन्याय किया गया। शिवदत्त और शुद्धोदन सारी बातों की तह तक पहुंच गये परन्तु सबके सब चुप चाप थे। अवधूत ने अपनी समझ में बहुत बुद्धिमानी से काम लिया। उसने सब कुछ कहते हुये भी सारी बातों को परदे में रक्खा। यह उसी का काम था दूसरों से इसकी आशा नहीं हो सकती थी। यदि वह स्पष्ट शब्दों में भाँडा फोड़ देता तो यह समझाने बुझाने का अवसर हाथ न आता। समझने वाले समझ गये, जानने वाले जान गये परन्तु किसी को कुछ कहने सुनने का समय कहाँ था। शुकदेव स्वाभाविक रूप से और रह का आदमी था। वह अपनी जुबान कभी न रोक सकता था परन्तु अवधूत ने उसे अपने वश में कर रक्खा था।

अवधूत को चुप देखकर मा मा नाना ने फिर कहा—महाराज! अब तो आप अपने व्रत को तोड़िये। आप का काम हो चुका।

अवधूत बोला—अभी तक काम पूरा नहीं हुआ। अधूरा काम रखना मेरे स्वभाव के विरुद्ध है। जीवन में काम के अवसर बार बार नहीं आते। यदि इनसे लाभ उठा लिया गया तब तो सफलता प्राप्त हो जाती है और यदि टालमटूल से काम लिया गया तो बना बनाया काम देखते देखते बिगड़ जाता है। कौन जाने फिर ऐसा अवसर आयेगा भी या नहीं? इसका क्या ठिकाना है!

मामा नाना ने पूछा—अब आपकी क्या नीयत है?

अवधूत ने उत्तर दिया—सावधानी से काम लो। जो होना है आज ही हो रहेगा।

यह कहकर अवधूत फिर कुछ देर के लिये चुप हो रहा। कुछ देर पीछे उसने शुद्धोदन और चन्द्रप्रभा की ओर आँख

उठाई। तुम दोनों विशाखा को अपनी औलाद मानते हो या नहीं? वह कपड़ा जिसमें यह लड़की मुझे लपेटी हुई मिली थी अब तक मेरे पास है। साथ ही जिसने उसमें दो हजार की अशरफियाँ बाँधी थीं, वह अपनी नीयत को जानता होगा। मैं इन बातों पर कोई सवाल नहीं करना चाहता। मैं केवल इतना ही चाहता हूँ कि विशाखा को तुम दोनों अपनी औलाद मानते हो या नहीं?

शुद्धोदन ने सर झुकाकर उत्तर दिया—आप कभी झूठ नहीं कह सकते। मैं आप सब लोगों के सामने इसे अपनी लड़की होना मानता हूँ। यह एक दम अपनी माँ को गई है।

अवधूत—तुम सच्चे आदमी हो। यह लड़की देवी है। मैंने इसकी बुद्धि का कोई मनुष्य आज तक नहीं देखा। यह शास्त्रों की जानने वाली है और साथ ही इसने इसी अवस्था में ललित विस्तर, अष्टासहस्र और संस्कृत प्राकृत की सारी पुस्तकें जो हाथ आ सकीं पढ़ ली हैं। मैं अवधूत हूँ और महर्षि दत्तात्रेय की सम्प्रदाय का अनुयायी हूँ परन्तु जब मुझे इसके घराने का पता लगा मैंने इसे बुद्ध धर्म की शिक्षा दी। इसके ऐसा अनुभवी, ज्ञानी और पंडित कोई भिक्षु बड़ी कठिनाई से किसी विहार में मिलेगा। आगे चलकर तुम आप इसकी योग्यता को देखोगे। यह वेदान्त के सिद्धान्त और बुद्ध धर्म के तत्व को भली भाँति समझती है। मैं यहां से जाने के पहिले ही पटना में साबित कर जाऊँगा कि संसार में एक महान् आत्मा प्रकट हो गया है जो धर्म के हर अंग को जानता है। बड़े हर्ष की बात है कि उसके घराने का सच्चा पता लग गया। अब इधर से मुझको इतमीनान हो गया।

शुद्धोदन—इसमें क्या सन्देह है!

अवधूत ने शुकदेव से कहा—शुकदेव! अब तुम्हारी बारी

है। तुमको या तुम्हारे मामा नाना को विशाखा की ओर से इतमीनान हुआ या नहीं ?

तीनों एक साथ बोले—अब आपको अधिक कष्ट उठाने की आवश्यकता नहीं है। आपने जो कुछ कहा उसे सच कर दिखाया।

अवधूत—शिवदत्त ! तुम्हारी क्या सम्मति है ?

शिवदत्त—मैंने तो सन्देह का कोई शब्द भी मुख से नहीं निकाला।

अवधूत—सच है। अच्छा ! शुकदेव और विशाखा ! तुम दोनों मेरे पास आओ।

वह उसके पास आये। अवधूत ने एक का हाथ दूसरे के हाथ में देकर कहा—मैं इस सभा के सामने विशाखा और शुकदेव को स्त्री पुरुष की हैसियत में रहने की आज्ञा देता हूं। आज से यह गृहस्थाश्रम में प्रवेश करते हैं। शुद्धोदन ! तुम्हारे घर से दो हजार अशरफियों का दहेज विवाह के पहिले ही शुकदेव को मिल चुका है परन्तु वह कम है। यों तो मैंने इनका विवाह कर दिया परन्तु तुम कुल रीति के अनुसार भी विवाह का रस्म करा दो। तुम्हारी आधी जायदाद शुकदेव और विशाखा की समझी जायेगी। तुमको इससे इन्कार तो नहीं है ?

शुद्धोदन—मुझे कुछ भी इन्कार नहीं है। मुझसे जो दहेज हो सकेगा वह मैं विवाह के समय भेंट करूँगा। मेरे पीछे मेरी आधी जायदाद विशाखा और शुकदेव की सन्तान की होगी।

अवधूत—बहुत ठीक ! मैं भी यही चाहता हूँ। शिवदत्त ! अब तुम मेरी बात का उत्तर दो। शुकदेव तुम्हारा बड़ा लड़का है, खानदान का क़ानूनी मालिक वही है। क्या तुम भी उसे अपनी आधी जायदाद का मालिक मानते हो या नहीं ?

शिवदत्त—समाज, रिवाज और व्यवहार के अनुसार वह मेरी आधी जायदाद का मालिक सदैव रहेगा। इससे मैं कभी इन्कार नहीं करूँगा। जीते जी वह मेरे कब्जे में रहेगी। मेरे पीछे आधी जायदाद वह ले लेगा।

अवधूत—बस ! इतना ही कहलवाना था। मैंने आधा काम कर लिया। आधा अभी बाकी है। इस फैसले पर किसी को उज्र हो तो वह कह सकता है। मैं उसके सुनने के लिये तैयार हूँ।

अवधूत थोड़ी देर तक चुप था। किसी ने कुछ नहीं कहा। फिर वह आप ही बोला—अब मैं अपने काम के दूसरे आधे हिस्से की ओर आप लोगों का ध्यान दिलाता हूँ। शुद्धोदन की एक लड़की लक्ष्मी है, जिसकी बातचीत पहिले शुकदेव के साथ हो चुकी थी। अब शुकदेव को मुरदा समझकर उसका सम्बन्ध रामदेव के साथ हो रहा है। क्या मेरा यह विचार ठीक है ?

शुद्धोदन और शिवदत्त दोनों ने कहा—हाँ, महाराज ! ऐसा ही है।

अवधूत—पहिले शुकदेव के साथ बातचीत हुई थी परन्तु कोई रस्म नहीं हुआ था। यदि रस्म भी हुआ होता और शुकदेव न रहता तो रामदेव के साथ उसका सम्बन्ध बुरा न समझा जाता। अब रामदेव के साथ बात भी पक्की हो चुकी है। लक्ष्मी और रामदेव दोनों ने इस भाव को अपने मन में दृढ़ कर लिया है। यह माना कि बिवाह नहीं हुआ परन्तु उनके मानसिक भाव की दृष्टि से आप समझ सकते हैं कि उनको क्या कहा जायेगा ? ऐसी दशा में हिन्दू धर्म आज्ञा नहीं देता कि बड़ा भाई छोटे भाई की स्त्री को हाथ लगाये या उसके कपड़े को छूये। शुकदेव विद्वान् और धर्मात्मा है शैव मत का अनुयायी है और अपने आपको वेदान्ती कहता है। उसका विवाह विशाखा के साथ हो भी गया। अब प्रश्न यह है कि रामदेव

और लक्ष्मी के विवाह में शुकदेव को कोई इन्कार तो नहीं है ? क्योंकि यदि शिवदत्त न होता तो शुकदेव ही रामदेव के बाप की जगह समझा जाता। इसलिये इसकी सम्मति लेना आवश्यक है।

शुकदेव पर पहाड़ टूट पड़ा। वह इस बात के लिए तैयार नहीं था। वह चाहता था कि विशाखा से विवाह हो जाने पर वह लक्ष्मी को भी अपनी स्त्री बनाये। हिन्दुओं में दो विवाह करना न उस समय निषिद्ध था और न अब बुरा समझा जाता है। अवधूत ने ऐसी भूमिका के साथ यह बात छेड़ी थी कि उसे कुछ कहने सुनने का साहस नहीं हुआ। वह सर झुकाये हुए बोला—अब मुझे कोई इन्कार नहीं है।

अवधूत—शाबाश बेटे ! आप सब लोगों ने भी सुन लिया। शुकदेव ने धर्म की बात कही है। अब मैं आप लोगों के सामने लक्ष्मी और रामदेव को बुलाता हूँ। वह मेरे पास आयें।

दोनों उठे अवधूत के पास आये। उसने एक का हाथ दूसरे के हाथ में देकर कहा—यह सब लोग गवाह हैं। मेरी आज्ञा से अब तुम दोनों स्त्री पुरुष की तरह रहो और आपस में प्रेम भाव रक्खो। लक्ष्मी ! तुम विशाखा के पावों पर गिरो। यह तुम्हारी बहिन होती हुई भी सास हैसियत की रखती है। रामदेव ! तुम भी शुकदेव के पाँव पड़ो। वह तुम्हारा बड़ा भाई होता हुआ बाप के बराबर है।

लक्ष्मी विशाखा के पावों पर गिरी। उसने उसे गोद से चिपटा लिया। रामदेव ने शुकदेव के पाँव पकड़ लिये। उसने उसे छाती से लगा कर सर और पीठ पर हाथ फेरे।

जो काम वर्षों में नहीं हो सकता था वह इस अवधूत ने दम के दम में पूरा कर दिया। वहाँ कोई भी ऐसा मनुष्य नहीं था

जिसकी आँखों से आँसू न निकल पड़े हों। चन्द्रमुखी और चन्द्रप्रभा पर इस घटना का गहिरा प्रभाव पड़ा। वह अपने आप को सँभाल न सकीं। चन्द्रमुखी शुकदेव से लिपट गई—बेटे! अपनी मां का अपराध क्षमा कर शुकदेव उसके पाँव पर गिरा। चन्द्रप्रभा विशाखा से चिपट गई—बेटी! आज तू मेरे पेट से पैदा हुई है और यह चारों फूट फूट कर रो पड़े। यह रोना सुख और पश्चाताप का था। संत महात्मा इस प्रकार जीवन को दम के दम में पलट देते हैं।

सुख देवें दुख को हरैं, करैं पाप का अन्त।
कहैं कबीर वह कब मिलैं? परम सनेही संत॥

तीसरा भाग

पहिला अध्याय

धार्मिक भेद भाव

संसार में शान्ति रखने के लिये सबसे अधिक जिस वस्तु की आवश्यकता है वह केवल धर्म है। धर्म का उद्देश्य शान्ति के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। इसी के लिये प्रार्थना की जाती है। इसी के लिये नाना प्रकार के जप तप और साधन इत्यादि किये जाते हैं परन्तु लड़ाई झगड़े की जड़ भी धर्म ही में सबसे अधिक दिखलाई देती है। दो भिन्न धर्म के मनुष्य मिल जुल कर नहीं रहते। एक दूसरे को घृणा की दृष्टि से देखता है और उसका परिणाम लड़ाई झगड़ा और अशान्ति है। धर्म के नाम पर लोहू की नदियाँ बहाई जाती हैं। सारे धर्मों और पन्थों के चलाने वाले अच्छे लोग हुए हैं। वह कभी नहीं चाहते थे कि संसार में रक्त की नदियाँ बहाकर अशान्ति फैलायी जाये। परन्तु किसी न किसी कारण वश उनको या उनके शिष्यों को मार धाड़ या लड़ाई भिड़ाई से काम लेना पड़ा है।

वैदिक धर्म के समय में देश की क्या अवस्था रही होगी, यह विचारने की बात है। वैदिक ग्रन्थ आर्य और दस्यु की लड़ाई से परिपूर्ण हैं। वेद के मन्त्रों में लड़ाई पर विजय पाने की प्रार्थना की गई है। ढाई तीन हजार वर्ष का समय हुआ बुद्ध भगवान ने धार्मिक सुधार की दृष्टि से नये धर्म की नींव डाली जो पहिले पहिल 'आर्य धर्म' कहलाता था। अब

सर्व साधारण उसी को 'बुद्ध धर्म' कहने लग गये हैं। उसका आशय प्रेम और दया के प्रचार का था परन्तु दुर्भाग्य या सौभाग्य से यह भी अशान्ति का कारण सिद्ध हुआ। यह सच है कि बुद्ध धर्म के इतिहास में लड़ाई झगड़ों के घृणित धब्बे नहीं पाये जाते परन्तु इसके प्रचार से वैदिक धर्म को बहुत बड़ा धक्का पहुँचा और उन्होंने बुद्ध धर्म वालों के साथ वह अत्याचार किये कि जिनके सुनने ही से रोंगटे खड़े होते हैं। अवधूत ने विशाखा और शुकदेव का विवाह करा दिया। वह पटना और रामगढ़ में रहने सहने लगे। कभी वह यहाँ रहते थे, कभी वहाँ। शिवदत्त ने अपनी आधी जायदाद शुकदेव को दे दी। इधर से उसे इतमीनान हो गया। चन्द्रमुखी रामदेव और शिवदत्त तीनों ही उसे प्रसन्न रखने का उद्योग करते रहते थे, जिसमें घर में अनबन और अशान्ति न होने पाये! परन्तु शुकदेव स्वभाव का चिड़चिड़ा था। अवधूत का आदर्श जीवन और विशाखा का जीवन व्यवहार उसके सुधार में बहुत कुछ सहायक होता, परन्तु दूध, घी और शकर से सींचे जाने पर भी नीम का वृक्ष मीठा नहीं होता और न पानी देने से बेंत के पौधे में फूल फल आते हैं। ऋषि मुनि ऐसा ही कहते चले आ रहे हैं और देखने में भी ऐसा ही आता है कि ब्रह्मा और देवताओं के गुरू बृहस्पति भी आकर समझायें तो पशुवत भाव वाले मनुष्य उनकी भी कभी न सुनेंगे। यह उल्टी खोपड़ी के मनुष्य कहे जाते हैं। यह चाहे समझ बूझ वाले भी हों और साथ ही पढ़े लिखे भी हों परन्तु हठधर्मी और पक्षपात का भूत सर पर सवार रहता है और वह इन्हें सीधी राह पर नहीं आने देता।

विशाखा घर के काम काज से छुट्टी पाकर बुद्ध चरित्र की

पुस्तकों को पढ़ा करती थी। यह शुकदेव को अच्छा नहीं लगता था। यदि वह कभी विहार के सत्संग या बुद्ध मंदिर में दर्शन के लिये जाती तो इसके हृदय में आग लग जाती थी। बहुत दिनों तक शुकदेव ने अपने भाव को छुपा रक्खा परन्तु भीतर ही भीतर उसके मन में द्वेष की अग्नि प्रचण्ड हो रही थी। कई बार छेड़ छाड़ की नौबत आई। विशाखा ने अपनी बातों के ठण्डे पानी से उसे बुझा दिया। वह समझती थी कि धीरे धीरे जब यह समझ जायेगा तब रोक टोक न करेगा, परन्तु यह तो समझने के लिये तैयार ही न था। कुछ दिनों पीछे यह दशा हो गई कि वह खुल्लम खुल्ला विशाखा का विरोधी बन बैठा।

शुकदेव ने एक दिन कहा—विशाखा! तेरा बुद्ध मन्दिरों में जाना मुझे पसन्द नहीं है।

विशाखा बोली—यदि तुम को पसन्द नहीं है तो मैं अब न जाऊँगी।

शुकदेव—मैं यह भी नहीं चाहता कि तू बुद्ध धर्म की पुस्तकें पढ़ा करे।

विशाखा—आप इन से अच्छी या इन जैसी और पुस्तकें ला दीजिये मैं उन्हीं का अध्ययन किया करूँ।

उस समय आज कल की तरह पुस्तकों का हाथ आना सुगम नहीं था। विशाखा के पास ताड़ के पत्तों पर बुद्ध धर्म की लिखी हुई कई पुस्तकें थीं। यह उसे अवधूत ने लादी थीं। वह इन्हें जान से बढ़ कर रखती थी। शुकदेव ने कई ग्रन्थ मँगवा दिये परन्तु जो बातें विशाखा को ललित विस्तर इत्यादि में मिलती थीं वह इन में कहाँ थीं! वह समय पाकर कभी कभी इन को देखा करती थी। यह कुछ उस का स्वभाव हो गया था। शुकदेव को यह बुरा लगा। उसने अवसर पाकर यह

पुस्तकें छीन लीं और उन्हें आग में जला दिया। यह एक ऐसी बात थी कि अच्छे से अच्छे मनुष्य के चित्त को भड़का देती। विशाखा ने इसे भी सह लिया। वह पति के साथ अनबन करना नहीं चाहती थी परन्तु बेचारी करती क्या! उसकी सहनशीलता भी उसके क्रोध को भड़का देती थी।

एक दिन शुकदेव आप ही कहने लगा—यह मेरा अभाग्य है कि तू मेरी स्त्री होकर भी बुद्ध धर्म की आनुयायिनी बनी हुई है। विशाखा ने इसका कोई उत्तर नहीं दिया। शुकदेव यदि मनुष्य होता तो अपनी स्त्री को अमूल्य रत्न समझता परन्तु चिड़चिड़ापन तो उसकी घुट्टी में पड़ा हुआ था। उसने मुँह बना कर पूछा—तू मेरी बातों का उत्तर क्यों नहीं देती?

विशाखा—तुम ने मुझ से कोई प्रश्न नहीं किया। अपने भाग्य को कोस रहे हो। मैं इसका क्या उत्तर दूँ!

शुकदेव—तू बुद्ध धर्म को क्यों नहीं छोड़ देती?

विशाखा—यदि वह छोड़ने की वस्तु हो तो छोड़ दी जाये। वह तो जीवन का सिद्धान्त है। उसका ग्रहण या त्याग कैसा! तुमने कहा—'पुस्तकें न पढ़ो' मैं ने पढ़ना बन्द कर दिया। तुमने मन्दिर में जाने से रोक दिया, मैं अब नहीं जाती। इससे अधिक अब और क्या चाहते हो?

शुकदेव—तू उसे जीवन का सिद्धान्त बतलाती है मैं तेरे मुँह से सुनना चाहता हूं कि वह किस प्रकार जीवन का सिद्धान्त है? मैं तो इसे अधर्म मानता हूँ।

विशाखा—यह आपको अधिकार है परन्तु साथ ही यह भी आपका धर्म है कि पति की हैसियत से मुझे समझाते बुझाते रहें। आप समझायें। यदि मैं भूल पर हूँ तो अवश्य ही मान जाऊँगी।

शुकदेव—तू मुझसे शास्त्रार्थ करना चाहती है?

विशाखा—नहीं प्राणपति ! नहीं, जो आप कहेंगे मैं ध्यान के साथ सुनूँगी और उस पर पूर्ण रीति से विचार करूँगी।

शुकदेव—बुद्ध ने अधर्म की शिक्षा दी है।

विशाखा—कैसे ?

शुकदेव—वह नास्तिक था, ईश्वर को नहीं मानता था और न ईश्वर के होने पर उसे विश्वास था और जब कोई मनुष्य ईश्वर या ब्रह्म को नहीं मानता तो फिर नास्तिक या अधर्मी हुआ या नहीं ?

विशाखा—यहाँ आप भूल पर हैं। भूल चूक सबसे हुआ करती है। बुद्धदेव न नास्तिक थे और न ईश्वर के होने से इन्कार करते थे। उनके यहाँ ईश्वर के विषय पर विचार करने की आवश्यकता ही नहीं है।

शुकदेव—बात तो वही हुई जो मैं कह रहा हूं। जब ईश्वर का सिद्धान्त ही नहीं रहा तो फिर अधर्म हुआ या नहीं ?

विशाखा—नहीं।

शुकदेव—तू मूर्खा और पाखंडी है।

विशाखा—चुप हो गई।

शुकदेव—उत्तर क्यों नहीं देती ?

विशाखा—मेरी समझ में नहीं आता कि मैं क्या उत्तर दूँ ? कोई प्रश्न हो तो उत्तर दिया जाये। जब प्रश्न ही नहीं है तो उत्तर कैसा ?

शुकदेव—प्रश्न तो है। क्यों ईश्वर के सिद्धान्त की आवश्यकता नहीं है ?

विशाखा—यही बात है जिसे कोई नहीं समझता। बुद्ध धर्म केवल दुख से बचने की राह बतलाता है। इसके अतिरिक्त उसकी और कोई हैसियत नहीं है। भूखे के लिये रोटी चाहिए। रोगी के लिये दवा का काम है। भूख या रोग के समय कौन

ईश्वर को सोचता है और उसके सोचने की आवश्यकता कब है? सारा संसार दुख के समुद्र में गोते खा रहा है। जिधर देखो दुख ही दुख दिखलाई देता है। यह बेचारे दुख से भागने और बचने की युक्ति सोचें या तत्व ज्ञान के गूढ़ विषय पर विचार करें।

शुकदेव—सारे दुखों से बचने की युक्ति ईश्वर की भक्ति है।

विशाखा—कहने को आप कह लें परन्तु यह सच्ची बात नहीं है। ईश्वर यदि है भी तो वह मन बाणी और सोच विचार से परे की वस्तु है और जब कोई वस्तु मनुष्य की पहुंच से ऊँची हो तो फिर वह दुख से बचने बचाने की युक्ति कैसे हो सकती है? जिसे कोई देखता नहीं, जो सुनने में आता नहीं, मन जिसका ध्यान नहीं कर सकता, जिसके विषय में जिह्वा हाँ या नहीं तक नहीं कह सकती, वह दुखों से बचने बचाने कीयुक्ति कैसे हुआ या कैसे हो सकता है? मुझे भूख लगी है। मैं रोटी माँगती हूँ और आप कहते हैं—'ईश्वर को सोचो'। मैं प्यासी हूँ और पानी पिलाने के बदले मुझे ईश्वर का नाम बताया जाता है। कहिये तो सही बुद्धि इसे कैसे रोटी पानी की युक्ति मान ले?

शुकदेव—तो तू कहती है कि ईश्वर नहीं है?

विशाखा—यह मैं नहीं कहती। इस समय मुझे रोटी, पानी की पड़ी है। भूखा, प्यासा मनुष्य ईश्वर के विषय पर क्या सोचेगा और कैसे सोचेगा? उसकी बुद्धि तो ठिकाने है ही नहीं। पहिले उसे भूख प्यास से छुटकारा मिले फिर वह ईश्वर के विषय को हाथ में ले।

शुकदेव—इससे यह तो सिद्ध नहीं होता कि ईश्वर नहीं है।

विशाखा—मैंने कब कहा कि ईश्वर नहीं है। मैं दुख की अवस्था में न उसे मानती हूँ न उस से इन्कार करती हूँ। मैं

केवल दुख से बचना चाहती हूं। रोगी को दवा की धुन है। आग से झुलसे हुए को पानी की खोज है। यह पहिले मिल जायें फिर अनावश्यक बातों की ओर ध्यान किया जाये।

शुकदेव—तो तेरी समझ में ईश्वर अनावश्यक पदार्थ है?

विशाखा—वर्तमान दशा में वह ऐसा ही है। उँगली चाकू से कट गई। उसे पानी और कपड़े से बाँधो या मरहम पट्टी लगाओ। इस समय केवल इतना ही चाहिए। इसके अतिरिक्त और सब अनावश्यक हैं।

दूसरा अध्याय

बुद्ध धर्म और वैदिक धर्म

शुकदेव—यह सच है कि समय समय पर विशेष वस्तुओं की आवश्यकता हुआ करती है परन्तु उसका आशय यह तो नहीं है कि ईश्वर की कभी आवश्यकता ही न पड़ती होगी।

विशाखा—बुद्ध भगवान ने ऐसा कभी नहीं कहा कि ईश्वर के विषय की कभी आवश्यकता पड़ती है या आवश्यकता नहीं पड़ती है। जिन्हें आवश्यकता हो वह उसकी ओर ध्यान दें। रोकता कौन है? परन्तु जो दुख के कारण किसी और ही वस्तु की खोज में हैं, उनको अनावश्यक पदार्थ की ओर ध्यान देने के लिये क्यों मजबूर किया जाता है। प्यासे को पानी चाहिए। पानी उसे दिया नहीं जाता और कहा जाता है कि 'ईश्वर ईश्वर करो या ईश्वर ईश्वर कहो।' वह बेचारा कैसे ईश्वर ईश्वर करे या ईश्वर ईश्वर कहे। यह समझने की बात है।

शुकदेव—तू तर्क शास्त्र बहुत अच्छा जानती है।

विशाखा—मैंने तर्कशास्त्र नहीं पढ़ा। साधारण समझ

बूझ की स्त्री हूँ। संसार के दुखों ने दबोच रक्खा है। उससे छुटकारा मिले, यही इच्छा है। बुद्ध धर्म इसी से मुक्त होने की राह बतलाता है। इसीलिये उसकी ओर दृष्टि है।

शुकदेव—तू ईश्वर की भक्ति क्यों नहीं करती ?

विशाखा—यदि मेरा चित्त ठिकाने हो और दुख दूर हो जाये तो मैं ईश्वर की भक्ति करूँ और वह भी उस समय जब मुझे उसकी आवश्यकता हो। बिना आवश्यकता के उधर ध्यान कैसे जायेगा ?

शुकदेव—जो ईश्वर को नहीं मानते वह अधर्मी हैं।

विशाखा—और यदि किसी को इन्कार नहीं है, तब उसे क्या कहा जायेगा ?

शुकदेव—तब मैं उसे धर्मपरायण और धर्मात्मा कहूँगा।

विशाखा—यह बात सोच समझकर कहिये। एक मनुष्य ईश्वर के होने से इन्कार तो करता नहीं परन्तु साथ ही उसके मानने से भी सम्बन्ध नहीं है, तो वह धर्मात्मा कैसे हुआ ? धर्मात्मा तो वह उस समय होता, जब उसे मानता। आग, पानी, मिट्टी, हवा इत्यादि न ईश्वर को मानते हैं, न उससे इन्कार करते हैं। क्या यह आपकी समझ में धर्मात्मा हैं ?

शुकदेव—यही बात मैं तेरे मुँह से कहलवाना चाहता था। तू नास्तिक हो गई है, इसलिये अधर्मी है।

विशाखा—आपको मैं कैसे समझाऊँ ? बुद्ध भगवान ने ईश्वर की ओर किसी का ध्यान नहीं दिलवाया। कारण यह था कि यदि वह इस फल्सफे की उलझन में फँसते तो उन्हें अपने जीवन सुधार का समय और अवसर न मिलता और मुक्त अवस्था प्राप्त न होती। लोग दन्तकथा में पड़कर सार तत्व को हाथ से खो देते हैं। बुद्ध धर्म ऐसा नहीं बतलाता। वह जीवन

के गढ़ने और दुखों के दूर करने का मार्ग है।

शुकदेव—तुझे बातें बनानी बहुत आती हैं। तू ईश्वर को मानेगी या नहीं मानेगी ?

विशाखा—मेरे दुख पहिले दूर हों। फिर मैं आवश्यकतानुसार मानने के लिये तैयार हो जाऊँगी !

शुकदेव—इस समय तू ईश्वर को क्यों नहीं मानती ?

विशाखा—मैंने इन्कार तो कभी नहीं किया ?

शुकदेव—मैं तो मनवा कर छोड़ूँगा।

विशाखा—चुप हो रही।

शुकदेव—तू बोलती क्यों नहीं ?

विशाखा—प्राणपति ! आप जो कहें वही बोलूँ।

शुकदेव—ईश्वर ईश्वर कर।

विशाखा—बहुत अच्छा ! ईश्वर ईश्वर करती हूँ।

शुकदेव—मेरे साथ मिलकर उसकी स्तुति गा—तूने पृथ्वी बनाई, तूने आकाश बनाया, जो कुछ बनाया तूने सब कुछ अच्छा बनाया।

विशाखा—मुझे स्तुति गाने से कोई इन्कार नहीं है परन्तु यदि आज्ञा हो तो मैं आप की शिष्य बनकर आप से शंका समाधान भी कर लूँ जिसमें मेरा भ्रम एक दम दूर हो जाये।

शुकदेव ने समझा कि विशाखा राह पर आरही है और वह बुद्ध धर्म को छोड़कर वैदिक धर्म की शरण में आ जायेगी। उसने कहा—हाँ ! प्रश्न कर मैं उसका उत्तर दूँगा।

विशाखा—ईश्वर कौन हैं ? क्या है ? कहाँ रहता है ? यह आकाश और पृथ्वी इत्यादि क्यों बनाता बिगाड़ता है ? इस बनाने बिगाड़ने से उसका प्रयोजन क्या है ? यह काम वह समझ बूझ कर करता है या यों ही अनाप सनाप किया करता है ?

शुकदेव—ईश्वर सर्व व्यापक तत्व है जो हर जगह रहता

है। ब्रह्माड को बनाकर वह अपनी महिमा दिखलाता है। वह जो कुछ करता है सोच समझ कर करता है।

विशाखा—यदि ईश्वर सर्व व्यापक तत्व है तो वह आकाश और पृथ्वी में रहकर उन्हें अपने अन्दर बनाता है या अपने से बाहर बनाता है? यदि अपने अन्दर बनाता है तो वह उससे भिन्न नहीं हो सकता और यदि वह अपने से बाहर बनाता है तो फिर वह सर्वव्यापक नहीं रहा। यदि ईश्वर संसार की रचना करके अपनी महिमा दिखलाना चाहता है तो उस में इच्छा है और इच्छा रखने वाला सदैव अपूर्ण समझ जाता है। यदि उस में इच्छा नहीं है और यों ही अनाप शनाप काम करता है तो फिर वह पागल होगा।

शुकदेव—यह बनाना बिगाड़ना उसका स्वाभाविक धर्म है।

विशाखा—यदि इस तरह बनाते रहने और बिगाड़ते रहने से उसे प्रेम है तो वह स्वाभाविक दीवाना और पागल ठहरता है। फिर ऐसे ईश्वर के पूजने से दीवानगी और पागलपने के अतिरिक्त और क्या लाभ होगा।

शुकदेव ने बहुत सोचा विचारा। उससे कोई उत्तर न बन आया। अन्त में अपनी लज्जा को छुपाने के लिये बोल उठा—पापिनी! तू ईश्वर को दीवाना और पागल कहती है।

विशाखा—मैं कुछ नहीं कहती। केवल ईश्वर को समझना चाहती हूं। आपने कहा—ईश्वर ईश्वर किया कर। पहिले तो मुझे इधर ध्यान देने की इच्छा ही नहीं थी क्योंकि संसार के दुखों से घबरा कर मैं मुक्त होना चाहती हूँ। जब आप बहुत कहने लगे तब मैंने जिज्ञासा की दृष्टि से दो चार प्रश्न किये।

शुकदेव—जिस तरह तू बुद्ध को पूजती है वैसे ही ईश्वर की पूजा कर।

विशाखा—जिस तरह आप ईश्वर की पूजा कराना चाहते हैं वह बौद्धों का ढंग नहीं है।

शुकदेव—बौद्ध क्या करते हैं ?

विशाखा—वह बुद्ध को आदर्श मान कर उनकी ख्याली और मानसिक मूर्त्ति के सामने जाकर विचारते हैं कि इसी मूर्त्ति वाले ने दुखों से छुटकारा पाने की राह खोज निकाली थी। उन की पूजा से अपनी कृतज्ञता के भाव को प्रकट करते हैं और वह अपने मन में इस इच्छा को जगह देते हैं कि सारा संसार बुद्ध भगवान का अनुयायी हो जाये और दुखों से छुटकारा पा जाये। यही बौद्धों की प्रार्थना है। इसके अतिरिक्त वह कोई और प्रार्थना या स्तुति नहीं करते। उनका मार्ग कथनी का नहीं है किन्तु करनी का है जिसे अष्टाङ्ग मार्ग कहते हैं और वह एक प्रकार का योग है।

शुकदेव—मैं समझ गया तू ईश्वर को न मानेगी।

विशाखा—प्राणनाथ ! मैं तो मानने के लिये तैयार हूँ। आप मनवाते क्यों नहीं ? थोड़ा बहुत लिखी पढ़ी हूँ इस लिये पूछा पेखी कर लेती हूँ जिससे मन में कोई शंका न रह जाये। यदि पढ़ी लिखी न होती तो इसकी नौबत न आती।

शुकदेव—मैं तो तुझ से तंग आ गया। सब कुछ कर डाला पुस्तकें जला दीं, विहार और मन्दिरों का आना जाना बन्द करा दिया परन्तु तू मन में अब तक पक्की बौद्ध है और नास्तिक है। आस्तिक व नास्तिक का मेल नहीं हो सकता। यह असम्भव है। मैं इसे पसन्द नहीं करता। तेल में पानी पड़ा है। वह शोर मचायेगा। इससे बचाव नहीं हो सकता। जब तक तू मेरे साथ रहेगी तब तक मुझे शान्ति न मिलेगी। अच्छा है अब तू घर से निकल जा। तू ने मुझे दो हजार रुपये दिये थे। उनके

बदले चार हजार रुपये ले जा। अब मेरी आँखों के सामने कभी मत आना।

विशाखा इस के लिये तैयार नहीं थी। वह नहीं जानती थी कि शुकदेव इतनी जल्दबाजी से काम लेगा और उसे घर से निकाल देगा। वह उसके स्वभाव को तो जान गई थी और नित्य ही उसकी बातें सह लिया करती थी। आज उसके पति ने अपना फैसला ही सुना दिया।

विशाखा ने कहा—आप की आज्ञा सर आँखों पर! परन्तु क्या मैं वास्तव में ऐसी ही दोषी हूँ?

शुकदेव—इसमें सन्देह ही क्या है? तू घोर नास्तिक और अधर्मी है।

विशाखा—मैं नास्तिक और अधर्मी सही परन्तु मेरे पेट में आपका पाँच महीने का लड़का है। वह तो निर्दोष है। उसके ध्यान से मुझे कुछ दिनों के लिये क्षमा कीजिये। फिर मैं जिधर राह मिलेगी चली जाऊँगी।

शुकदेव—मैं तुझे साथ रखना नहीं चाहता। धर्मात्मा और अधर्मी का मेल नहीं हो सकता। यह असम्भव है।

विशाखा—प्राणनाथ! अच्छों के साथ बुरों का भी निर्वाह हो जाता है।

शुकदेव क्रोध में पागल हो रहा था। उसने डपटकर कहा—तुझे अपने इष्ट देव की कसम है। अब एक पल के लिये भी इस घर में न रह। हम वैदिक धर्म के मानने वाले हैं। हमारा सदैव से यह दस्तूर है कि जो हमारे सिद्धान्त पर नहीं चलता उसे उसी समय जाति से निकाल देते हैं। इस घर में अब तेरे लिये जगह नहीं है।

विशाखा उठ खड़ी हुई, पति को नमस्कार किया, कपड़े या रुपये पैसे कुछ भी साथ नहीं लिये और घर से बाहर निकल गई।

तीसरा अध्याय

पति और स्त्री की दशा

विशाखा को न दुख हुआ न सुख ! वह जानती थी कि यह दशा किसी न किसी दिन आयेगी। पता नहीं माँ बाप ने उसे कितने दिनों अपने घर में रक्खा, फिर जंगल में फेंक दिया। अवधूत ने चौदह पन्द्रह वर्ष तक उसका पालन पोषण किया। आश्चर्य की बात तो यह है कि विरक्त तो गृहस्थी का धर्म पालन करें और गृहस्थी पक्षपात में फँसकर अपने मुख्य धर्म से पतित हो जायें। पति ने पाँच वर्ष तक उसे अपने घर में रक्खा। वह गर्भवती थी। निर्दयी हत्यारे ने धार्मिक भेद भाव के कारण उसे घर से निकाल दिया। बुद्ध धर्म की पुस्तकों से पता लगता है कि शुकदेव ने विशाखा को दो चार तमाचे भी मारे थे।

घर से निकली। वह अवधूत की दया और अपने पति की निष्ठुरता पर विचार करती जाती थी। वह उस विहार में आई जहाँ सत्संग के लिये बराबर आया करती थी और अपनी राम कहानी कह सुनाई। उसके दुख की कथा सुनकर स्त्रियों का दिल भर आया। उन्होंने उसे प्रेम के साथ दिलासा दिया और अपने पास ठहराया। वह भिक्षुणियों की तरह विहार में रहने लगी। चार महीने पीछे उसके गर्भ से महा रूपवान लड़का उत्पन्न हुआ। भिक्षुणियों ने उसका नाम आनन्द रक्खा। यही बुद्ध भगवान् के गुरुमुख चेले का भी नाम था। वह पाँच वर्ष तक बराबर बिहार में रही। यह बिहार पटना ही में था परन्तु न तो शुकदेव को विशाखा का समाचार मिला और न इसने शुकदेव का पता लिया। गृहस्थाश्रम के जीवन का अनुभव करना था, कर लिया।

इधर शुकदेव की दशा भी बिगड़ने लगी। जो मनुष्य अपनी सुशीला और धर्मात्मा स्त्री के साथ ऐसा अनुचित व्यवहार करेगा, उसका निर्वाह दूसरों के साथ कैसे हो सकता है? वह क्रोधी और चिड़चिड़ा होता गया। हठधर्मी और पक्षपात ने उसे मनुष्य से पशु बना दिया। उस समय इस देश में बुद्ध-धर्म का अधिकता के साथ प्रचार था। हजारों भिक्षु घूम घूमकर शिक्षा दिया करते थे और यह शान्ति और सच्चाई के रूप समझे जाते थे। जहाँ जाते थे, आनन्द की वर्षा हो जाती थी परन्तु शुकदेव की दृष्टि में यह साधू अपाहिज और निकम्मे होते हुए उसकी आँखों में काँटे की तरह खटकते रहते थे। मन्द सुगन्ध वायु कैसी आनन्द दायक होती है परन्तु इससे रोगी का रोग भी बढ़ जाता है। हवा, पानी, गर्मी सर्दी सब की यही दशा है। ठीक इसी प्रकार धर्मात्माओं के दर्शन से अधर्मियों के दिल को धक्का पहुँचता है। वह मन का मलीन भी हो गया। बुद्ध धर्म उसकी आँखों का काँटा बन गया।

शिवदत्त और रामदेव से उसकी अनबन हो गई। पटना में अकेले रहने से उसकी शान्ति जाती रही। विशाखा उसकी ढाल थी! उसके जाते ही घर बार बिगड़ने लगा। नौकर चाकर छोड़ भागे। गालियाँ सुनते सुनते उनका जी घबरा गया। मामा नाना भी उसके अनुचित व्यवहार से तंग आ गये। वह सोचने लगा कि हो क्या गया? उसने इस बात को समझ लिया कि विशाखा के चले जाने से उसके बुरे दिन आ गये। वह विशाखा की नौकरानियों को याद करता जाता था, परन्तु हठीला ऐसा था कि जिससे एक बार बिगड़ी उससे जीवन पर्यन्त बातचीत तक नहीं करता था। स्त्री के जाते ही माँ बाप भाई सबसे अनबन हो गई। अब उसकी दशा बड़ी ही शोचनीय थी।

जब कारबार के बिगड़ने की बारी आने लगी, उसने सारी

जायदाद मामा नाना के सुपुर्द की और आप बनारस के सारनाथ के पास आकर एक जगह गंगा के किनारे झोंपड़ा डालकर रहने लगा। अब वह एक दम वैरागी हो गया परन्तु नियमानुसार सन्यासी नहीं बना। झोंपड़े के अन्दर कुछ बेल बूटे नाम के लिये लगा रक्खे थे। पहिले जब वह आया था तो कुछ लोग उसके झोंपड़े में आने जाने लगे थे। जब देखा कि यह स्वभाव का चिड़चिड़ा और क्रोधी है, सब ने आना जाना बन्द कर दिया। यह उस फूस के झोंपड़े में दिन रात अकेला ही रहने लगा।

विशाखा की वह दशा हुई। शुकदेव इस दुर्गति को पहुँचा। कर्म का बदला तो भोगना ही पड़ता है। गोस्वामी तुलसीदास जी ने सच कहा है:—

जहाँ सुमति तहँ सम्पति नाना।
जहाँ कुमति तहँ बिपति निधाना॥

जो धार्मिक दृष्टि से कट्टर, पक्षपाती और हठधर्मी है, वह अपना आप शत्रु है। जहाँ जायगा, देखते देखते हजारों को अपना शत्रु बना लेगा। यही हाल इस कट्टर मत वाले का हुआ। बौद्धों को तो यह फूटी आँख से भी नहीं देखता था और वैदिक धर्म वाले इससे आँख बचाकर रहते थे। कोई मिलने मिलाने तक नहीं आता था। जिस जगह उसका झोंपड़ा था, उसके आस पास के लोग उसे भूँकने वाला कुत्ता कहा करते थे। शुकदेव का तो कोई नाम तक नहीं जानता था। वह कुत्ता ही के नाम से प्रसिद्ध था।

चौथा अध्याय

कुत्ता

इस देश में बौद्धों के तीन मुख्य तीर्थ स्थान हैं:—कपिलवस्तु गया, और सारनाथ।

कपिलवस्तु बुद्ध भगवान की जन्म भूमि है और नैपाल की तराई में है। गया, पटना के पास है और इसी जगह बड़ के वृक्ष के नीचे बुद्धदेव को निर्वाण प्राप्त हुआ था। सारनाथ बनारस में है। यहाँ भगवान का पहिला व्याख्यान हुआ था। कपिल वस्तु में पैदा हुये, संसार को दुखी देख कर दुखी हुये और दुख से मुक्त होने की इच्छा से जप तप किया। फिर इससे निराश हो कर गया में आसन जमाया और ज्ञानी हुये। बुद्ध ज्ञानी को कहते हैं। ज्ञान प्राप्त होने के पश्चात् संसार को दुख से बचाने के लिये सारनाथ बनारस में आये और यहाँ बुद्धधर्म का पहिला व्याख्यान दिया। इसी लिये यह तीनों स्थान पवित्र समझे जाते हैं और चीन, जापान, कोरिया, मनचूरिया, रूस, अनाम, कम्बोडिया, हिन्दूचीन, ब्रह्मा और लंका के बौद्ध इनके दर्शन के लिये आते रहते हैं।

वैसाख का महीना बौद्धों के धर्म में पवित्र और पुनीत माना गया है। इसका कारण यह होगा कि बुद्धि भगवान का जन्म इसी महीने में हुआ है या इसी मास में उनको निर्वाण हुआ या सारनाथ में आकर धर्म का प्रचार आरम्भ किया। इन तीनों में से कोई न कोई बात अवश्य होगी।

सार नाथ किसी समय बहुत ही रमणीक स्थान रहा होगा। वहाँ पहिले मीलों तक भिक्षुओं के विहार बने हुये थे और महाराज अशोक का स्तम्भ अब तक वैसा ही खड़ा है जिसे

देख कर आश्चर्य होता है। बुद्धि काम नहीं करती कि इतने भारी और लम्बे चौड़े पत्थर इस उँचाई तक कैसे पहुँचाये गये होंगे।

विशाखा इस पाँच साल तक बराबर पटना के विहार में थी। सम्भव है उसे ध्यान रहा हो कि शुकदेव कभी न कभी आकर उसे ले जायेगा परन्तु यह विचार असत्य ठहरा। वह बड़ा ही हठीला था। स्वभाव में अत्यन्त चिड़चिड़ापन आ जाने से वह विशाखा को एक दम भूल गया और पटना से भाग कर सारनाथ चला आया और सारनाथ महादेव के मन्दिर के पास फूस का झोंपड़ा बना कर रहने लगा।

विशाखा के विहार की भिक्षुणियाँ वैसाख में काशी जाने को तैयार हुईं। यह भी उनके साथ चली आई और गंगा स्नान कर के तीर्थ की परिक्रमा में लगी। गर्मी के दिन थे। सारनाथ के पास पहुंच कर वृक्षों के नीचे विश्राम करने के लिये बैठ गईं। आनन्द विशाखा का लड़का चंचल और खिलाड़ी था। स्त्रियाँ तो आपस में बात चीत करने लगीं। यह घूमता फिरता हुआ शुकदेव की कुटी की ओर जा निकला। दो राही उधर से जा रहे थे। उनमें से एक ने दूसरे से कहा—भूँकने वाला कुत्ता इसी झोंपड़े में रहता है। आनन्द ने यह बात सुन ली। वह विहार में कुत्तों के साथ खेला करता था। कुत्ते का नाम सुनते ही वह प्रसन्न चित्त हो गया और उसके देखने की इच्छा हुई। लड़का अभय था, टहलता हुआ झोंपड़े के हाते में चला गया और फूल तोड़ने लगा। शुकदेव ने उसे देख लिया, झोंपड़े के अन्दर से बोला—कौन है? क्यों फूल तोड़ता है? यहाँ से चला जा। वह इस डाँट से डरा नहीं, किन्तु शुकदेव के पास जा पहुंचा। मैंने सुना है यहाँ भूँकने वाला कुत्ता रहता है। उसको देखने आया हूँ।

शुकदेव—जा ! भाग जा ! यहाँ कोई कुत्ता नहीं रहता।

आनन्द—तुम झूठ बोलते हो। कुत्ता यहाँ रहता है, वरन राह चलने वाले मुसाफिर ऐसा कभी न कहते।

शुकदेव को बुरा लगा—तू डरता नहीं ?

आनन्द हँसा—डर किस बात का ? कुत्ते का डर कैसा ! मैं कुत्ते से खेला करता हूँ ?

शुकदेव—तू है कौन जो यहाँ आया है ? किसने तुझे यहाँ भेजा है ?

आनन्द ने इस प्रश्न का कोई उत्तर नहीं दिया, किन्तु मुसकराकर पूछा—बताओ ! कुत्ता कहाँ है ?

शुकदेव—तूने नहीं सुना ? कोई कुत्ता यहाँ नहीं है।

आनन्द—वाह ! मैं न मानूँगा। कुत्ते को देखूँगा। बिना देखे न जाऊँगा।

बच्चा हठीला था। वह झोंपड़े के अन्दर घुस गया, शुकदेव का हाथ पकड़ लिया—आनन्द को कुत्ता दिखाओ।

शुकदेव—कुत्ता यहाँ नहीं है।

आनन्द—मैं नहीं मानता, कुत्ता यहाँ है। वह इसी झोंपड़े में रहता है, खाता पीता और भूँकता है। इसी में सोता है। यहीं खेलता है। तुम झूठ बोलते हो।

आनन्द बच्चा था, भोला भाला था, उसकी आँखों में जादू था। शुकदेव पर उसका गहिरा प्रभाव पड़ा। वह अपना क्रोध एक दम भूल गया। उसने प्यार के साथ फिर पूछा—किसने तुझे बताया है कि यहाँ कुत्ता रहता है ?

लड़के ने हाथ से इशारा किया। सौ गज की दूरी पर कुछ स्त्रियाँ बैठी हुई दिखलाई दीं। इसे आश्चर्य हुआ। लड़के ने फिर कहा—"दो मुसाफिर जा रहे थे। वह कह गये हैं कि इस झोंपड़े में भूँकने वाला कुत्ता रहता है।"

शुकदेव—यह मूर्ख मुझे ही कुत्ता कहते हैं ?

आनन्द—नहीं ! तुम आदमी हो। तुम्हारे दुम नहीं है। कुत्ता कहीं बँधा होगा। दिखाओ ! मैं देखकर चला जाऊँगा। वैसे मैं न जाऊँगा और न मैं तुम्हारी सुनूँगा।

शुकदेव—तू है कौन जो ऐसा निडर बना हुआ है ? किसका लड़का है ? बता तो सही।

आनन्द—मैं आनन्द हूँ। बुद्धदेव का लड़का हूं। जल्दी कुत्ते को खोजो। उसे रोटी खिलाऊँगा, मारूँगा नहीं।

शुकदेव बुद्ध भगवान का नाम सुनते ही तलमला उठा। उसकी आँखें क्रोध से लाल हो गईं। लड़का हँसने लगा—तुम कुत्ते को न दिखाओगे, मैं जान गया। अच्छा ! मैं जाता हूँ।

शुकदेव—भाई ! अपनी आँखों से देख ले। यहाँ कुत्ता कहाँ है ? तुझ से किसी ने झूठ कहा होगा।

आनन्द ने शुकदेव का हाथ पकड़ लिया, उसे उठाया और हाथ पकड़े हुए इधर उधर चक्कर लगाया। कुटी की चौकी और बासन इत्यादि को देखकर कहने लगा—कुत्ता इसी चौकी पर बैठता है। इसी बरतन में खाता है। इसी लोटे में पानी पीता है। उसने पुस्तकों को भी देखा भाला—क्या यह भी उसी की हैं ? कुत्ता पढ़ता नहीं है। यह किसी और की होंगीं।

बच्चे के भोलेपन ने शुकदेव के दिल को नर्म कर दिया। वह मन ही मन सोचने लगा—यह बड़ा ढीठ है। यदि मैंने विशाखा को घर से न निकाला होता तो उसका लड़का भी आज इतना ही बड़ा होता। पता नहीं वह क्या हुई ! और किधर चली गई ! मैंने अच्छा नहीं किया !

उसने लड़के को पास बिठा लिया और दो चार आम के फल दिये। आनन्द ने ले लिये और उन्हें चूसने लगा।

पाँचवाँ अध्याय

मिलाप

स्त्रियों ने देखा आनन्द वहाँ नहीं था। यह घबराईं। विशाखा को अपने बच्चे पर अधिकार रहता था परन्तु यह परदेस और अनजान जगह थी। वह भी बेचैन हो गई। इधर देखा उधर देखा, बच्चा कहीं दिखलाई नहीं दिया। तब यह सबकी सब उसे ढूँढने लगीं। विशाखा सीधी कुटी के हाते में जाकर पुकारने लगी—"आनन्द! आनन्द! तू कहाँ है? बोलता क्यों नहीं?" माँ की आवाज सुनकर आनन्द ने झोंपड़े के अन्दर से उत्तर दिया--मैं यहाँ हूँ। कुत्ता देखने आया था। वह नहीं मिला। तू भी आ जा। विशाखा कुटी के भीतर गई, शुकदेव को नहीं पहिचाना क्योंकि धूप में आने से उसकी आँखें तल-मला गई थीं--महाराज! यह मेरा बालक है।

शुकदेव विशाखा को पहिचान कर बोला—विशाखा! तू यहाँ कैसे आगई?

पति की बोली सुनकर विशाखा उसे पहिचान गई और रोती हुई उसके पाँव पर गिरी। उसने उसे उठा कर छाती से लगा लिया और धाएँ मार मार कर रोने लगा—देवी! मैं कृतघ्न कुत्ता हूँ। कुत्ते भी नेकी मानते हैं। तेरे लड़के ने आज मुझे समझा दिया कि मेरे जैसा मनुष्य कुत्तों से भी कहीं गिरा हुआ है। मैंने तुझ पर महा अत्याचार किया। मैं पापी हूँ; मैं इस योग्य भी नहीं हूं कि तेरे पाँव को हाथ लगा सकूँ। क्या तू मेरे अपराध को क्षमा न करेगी!

विशाखा--महाराज! यह आप ही का लड़का है। यदि भूल से कुछ कह बैठा हो तो क्षमा कीजिये। नादान बच्चा है।

मैं भिक्षुणियों के साथ वैसाख का उत्सव देखने आई थी। मेरी तीर्थयात्रा सुफल हो गई। आप का दर्शन मिल गया। इससे अधिक मैं और कुछ नहीं जानती।

शुकदेव लड़के को प्यार करने लगा।

आनन्द ने कहा— भाई! क्या यह बुद्धदेव है? मैं तो बुद्ध भगवान का लड़का हूं। इनका लड़का नहीं हूं।

विशाखा ने अपने आँचल से पति के आँसू पोंछे।

शुकदेव—मैं पापियों में पापी हूँ। आज मुझे अपनी असलियत का पता लगा। यह लड़का भूँकने वाले कुत्ते की खोज में आया था। वह भूँकने वाला कुत्ता मैं ही हूँ। अपने किये पर पश्चाताप करता हूँ। मैं व्यर्थ ही भूँकता रहा। मेरे अपराधों और अनुचित व्यवहारों को भूल जा। तू मेरी जीवन दात्री थी। तू ने रुपये देकर मुझे लखपती बना दिया। मैंने तेरे साथ अन्याय किया। तेरी नेकियों को एकदम भूल गया। आनन्द मुझे बुद्धदेव बताता है। यदि अब भी मैं बुद्धदेव की शरण में न आऊँ तो मुझसे अधिक भाग्यहीन कोई भी न होगा। देवि! मेरे अत्याचारों को भूल जा। आज नहीं कल सारनाथ का उत्सव है। मैं कल तेरे साथ संघ में चलूँगा और बुद्धदेव का शिष्य बनूँगा। जीवन का अनुभव हो गया। यदि अब तक तू भिक्षुणी नहीं हुई है तो मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि जीवन पर्यन्त तेरी सेवा प्रेम और सत्कार के साथ करता रहूंगा। अब मेरा भूँकना सदैव के लिये बन्द हो गया।

विशाखा—मैं अब तक भिक्षुणी नहीं हुई। आनन्द के कारण मैंने यह व्रत धारण नहीं किया। क्या तुम पाँच साल तक अकेले रहे हो और दूसरा विवाह नहीं किया? मैं तो महा दुखी होकर घर से निकली थी। तुमने इष्ट देव की कसम न दी

होती तो मैं कभी तुम से अलग न होती। अब तक मेरे हृदय में तुम्हारा सच्चा प्रेम है।

शुकदेव—विशाखा! अब मुझसे अधिक प्रश्न न कर। मैं धर्म के पाखंड जाल में फँसा हुआ था। उसी ने तेरे साथ बद-सलूकी कराई। तुझे मैं नहीं भूला। तू आज न मिलती तो मैं जीवन पर्यन्त अकेला ही रहता! एक ही बार केले में फल आते हैं। एक ही बार मनुष्य के हृदय में प्रेम का भाव उत्पन्न होता है। मैंने कभी भूलकर भी किसी स्त्री का ध्यान नहीं किया। जैसे काँटों में लिपटा हुआ गुलाब का फूल होता है, वैसे ही मेरे चिड़चिड़ापन में भी तेरा प्रेम छुपा हुआ था। देख! तेरे वियोग में मेरी क्या दशा है?

दोनों फिर गले मिले और रोने लगे। दूसरी भिक्षुणियाँ भी ढूँढ़ती हुई झोंपड़े में पहुंची। जब उन्होंने सारा हाल सुना उनका हृदय हर्ष से गद्गद हो गया और स्त्री पुरुष के मिलाप पर उनको बधाई दी।

उस दिन यह सब यात्री शुकदेव के झोंपड़े में ठहरे। उसने यथा शक्ति इनके खान पान का प्रबन्ध किया। अब आनन्द और विशाखा के मिलाप से उसका जीवन एक दम बदल गया।

अन्तिम परिणाम

दूसरे दिन शुकदेव, आनन्द और विशाखा सारनाथ के विहार में गये। उस समय मठ का महन्त शारिपुत्र नामक भिक्षु था। शुकदेव उससे मिला और दूसरे भिक्षुओं की सम्मति से उसे बुद्ध धर्म का गुरुमन्त्र बताया गया, जिसे संघ के नियम के अनुसार उसने तीन चार बार अपने मुँह से उच्चारण किया:—

(१) बुद्धं शरणं गच्छामि (मैं बुद्ध की शरण लेता हूँ।)
(२) धर्मं शरणं गच्छामि (मैं धर्म की शरण लेता हूं।)
(३) संघं शरणं गच्छामि (मैं संघ की शरण लेता हूँ।)

फिर उसे बुद्ध धर्म की प्रार्थना सिखाई:—

(१) सर्व जगत् बुद्ध परायणमस्तु (अर्थात सारा जगत बुद्ध परायण हो।
(२) सर्व जगत् प्रज्ञा पारमिता परायणमस्तु (अर्थात सारा जगत प्रज्ञा पारमिता परायण हो।)
(३) सर्व जगत् निर्वाण परायणमस्तु (अर्थात सब जगत निर्वाण परायण हो।)

इसके पश्चात् उसे चार सच्चाइयों की शिक्षा दी गई जो बुद्ध धर्म के मुख्य सिद्धान्त हैं:—

(१) दुख है।
(२) दुख का कोई न कोई कारण है।
(३) दुख का नाश हो सकता है।
(४) और दुख के दूर करने की युक्ति बौद्धों का अष्टाङ्ग मार्ग है।

फिर अष्टाङ्ग मार्ग बताया गया जो उनका योग साधन है और साथ ही दस नित्य नियम के पालन करने की विधि बतलाई गई इत्यादि इत्यादि·····

इस प्रकार शुकदेव ने बुद्ध धर्म की शरण ली।

जिस समय उसका संस्कार किया जा रहा था, भिक्षु और भिक्षुणियों ने मिलकर यह राग गाया:—

धर्म से होता है जीवों का भला।
धर्म से हो जाता है अच्छा बुरा ॥१॥
धर्म की जोती जलाओ मन में तुम।
धर्म ही का राग गाओ बन में तुम ॥२॥

धर्म का अनुराग सच्चा राग है।
धर्म की इच्छा ही सच्चा भाग है ॥३॥
जो शरन में सत गुरु के आयेगा।
धर्म का धन इस जगत में पायेगा ॥४॥
धर्म और संघ की लेकर शरन।
करलो निश्चल उससे सब तन और मन ॥५॥
धर्म ही से जगत का कल्यान है।
धर्म शुभ इच्छा की सच्ची खान है ॥६॥
धर्म की जय को सदा गाते रहो।
धर्म के मारग में सब आते रहो ॥७॥

उत्सव समाप्त होने पर तीनों पटना में आये, अवधूत की कुटी में जाकर दर्शन किया और अपना हाल सुनाया। दीक्षा लेने के दिन से शुकदेव का जीवन धर्म का सच्चा जीवन बन गया।

भिक्षा शब्द

दाता! सत् सन्तोष दे, दया धर्म विश्वास।
और नहीं कुछ चाहिये, निस दिन तेरी आस ॥१॥
ममता मोह न मद लहूँ, काम ईर्षा त्याग।
जिसके मन में यह बसें, मन्द है उसका भाग ॥२॥
चरन कमल रज संत की, मन के माथे धार।
सहजहिं भवसागर तरूँ, अधिकारी जन तार ॥३॥
भक्ति भाव चित में बसे, हिये रचे गुरु-ज्ञान।
यह करतब है दास का, दास धर्म पहिचान ॥४॥
प्रेम पन्थ में आय कर, अब क्यों करूँ विरोध।
मन निर्मल हो बुद्धि शुध, व्यापे द्रोह न क्रोध ॥५॥

❀ इति ❀